ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 5 अंक 17-18 जनवरी-जून 2019

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

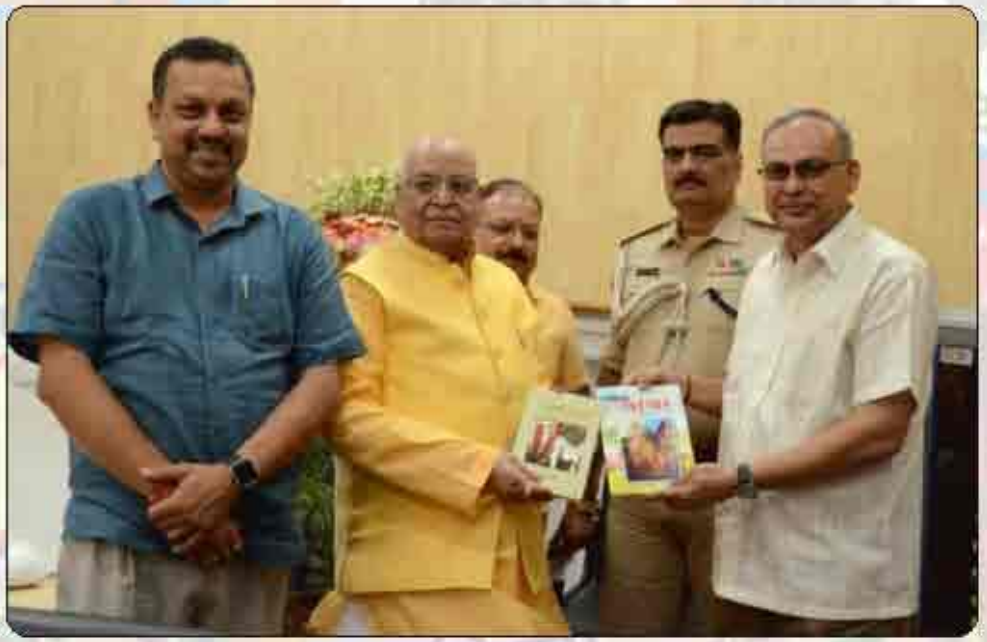

दिनांक 23 मई को राजभवन में बिहार के महामहिम राज्यपाल, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी तथा उच्च शिक्षा को नवगति प्रदान करने वाले माननीय श्री लालजी टंडन जी को पुस्तक एवं साहित्य यात्रा की प्रति भेंट करते हुए साहित्य यात्रा के संपादक प्रोफेसर कल्यानाम मित्र। साथ में राज्यपाल के प्रधान सचिव आदरणीय श्री विवेक कुमार सिंह।

एस.एन. सिन्हा स्मृति व्याख्यानमाला में अध्यक्षीय वक्तव्य देते पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय के विद्वान कुलपति माननीय प्रो० जी.सी.अवर. जायसवाल। साथ में हैं महाविद्यालय के प्रधानाचार्य प्रो० एस.पी. शाही, साहित्य यात्रा के संपादक प्रो० कल्यानाम मित्र तथा राज्यसभा के माननीय उपसभापति श्री हरिवंश नारायण सिंह।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
डॉ॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्र' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	400/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

यहाँ से काटिए

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०..... द्वारा.....

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :.....

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :..... दिनांक :.....

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्र, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1, खाता क्रमांक- 623000100016263, IFSC- PUNB0623600

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

वर्ष-5 अंक-17-18 जनवरी-जून, 2019

परामर्शी

डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह

डॉ० संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो० (डॉ०) प्रतिभा सहाय

सहायक संपादक

डॉ० सत्यप्रिय पाण्डेय

डॉ० रवीन्द्र पाठक

संपादक

प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08750483224
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, सालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय	07
आलेख **कबीर की क्रांतिकारिता में नारी का पेंच** बलराम तिवारी	11
आलेख **लघु कथा शिल्प एवं संवेदना** गणेश प्रसाद	18
आलेख **प्रेमचंद और रेणु के उपन्यासों में गाँव** डॉ. सुनील कुमार पाठक	21
आलेख **साहित्य साधक आचार्य श्रीरंजन सूरि देव** डॉ. ध्रुव कुमार	25
आलेख **भारतेन्दु-पूर्व-युगीन खड़ीबोली** डॉ. जसपाली चौहान	29
कहानी **स्टेण्ट** अरूण अर्णव खरे	35
कहानी **क्या यही-सच है?** रीना सिन्हा	39
कहानी **कबूल है** गोविन्द सिंह वर्मा	43
आलेख **करवा चौथ और नारी की अस्मिता : वर्त्तमान संदर्भ** डॉ. साधना गुप्ता	46
आलेख **स्वातंत्र्योत्तर कथाशिल्पी अमरकांत : एक नजर** सुलोचना कुमारी	52

दस्तावेज
काव्य में सत्य की अभिव्यक्ति 58
डॉ. रामअवध द्विवेदी

आलेख
महादेवी की कविता 64
श्री गंगा प्रसाद पांडेय

पुस्तक-समीक्षा
आमलोगों को जागृत करनेवाली कविताओं का संग्रह 'अँखुआते शूल' 75
जिया लाल आर्य

कविता
दिव्यांजलि 78
डॉ. इन्द्र कान्त झा

कहानी
नन्हे सेंटा 79
नेहा भारद्वाज

आलेख
समतावादी विचारक बाबा साहब अम्बेडकर 82
अमित कुमार रजक

डायरी अंश
आते-जाते दिन 85
राम दरश मिश्र

आलेख
सहज प्रेम का जनगायक-त्रिलोचन 89
अमित कुमार मिश्रा

आलेख
मनोहर का जवाहर पक्ष 95
डॉ. विजय प्रकाश

रिपोर्ट
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा द्वारा राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन 99
श्रीमती माधुरी बाजपेयी

रिपोर्ट
छायावाद का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक 103
प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित

सम्पादकीय

समय का संदर्भ और साहित्य का दायित्व

वर्तमान आकाश से गिरी हुई संबंध रहित वस्तु न होकर भूतकाल का ही बालक है जिस के जन्म का रहस्य भूत काल में ढूंढा जा सकता है। उसी तरह हम कह सकते हैं कि भविष्य भी वर्त्तमान के ही गर्भ से निकलता है।

यही कारण है कि महान रचनाकार की रचना कालजयी होती है। इनमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ साथ एक सृजनात्मक भावना रहता है। प्रेमचंद ने स्वीकार किया है कि 'मनुष्य का जीवन केवल स्त्री-पुरूष-प्रेम का जीवन नहीं है। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि क्या वह साहित्य, जिसका विषय श्रृंगारिक मनोभावों और उनसे उत्पन्न होनेवाली विरह-व्यथ, निराशा आदि तक ही सीमित हो-जिसमें दुनिया की कठिनाइयों से दूर भागना ही जीवन की सार्थकता समझी गई हो, हमारी विचार और भाव सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है? श्रृंगारिक मनोभाव मानव-जीवन का एक अंग मात्र है, और जिस साहित्य का अधिकांश इसी से सम्बन्ध रखता हो, वह उस जाति और उस युग के लिए गर्व करने की वस्तु नहीं हो सकता और न उसकी सुरूचि का ही प्रमाण हो सकता है।'

अत: रचनाकार के लिये समय की जरूरतों का ध्यान रखना आवश्यक है। समय की चुनौतियों से रू-ब-रू होना आवश्यक है।

समय के सामने सबसे बड़ी चुनौती है वैश्वीकरण का प्रभाव। चाहे वह सामाजिक हो, राजनैतिक हो, आर्थिक हो, मनोवैज्ञानिक हो, हमें रोज नयी-नयी समस्याओं से निबटना पड़ता है। आज साहित्य और उसकी परंपराओं के मूल में पहली चुनौती है- वैश्वीकरण (ग्लोब्लाइजेशन), जिसने उपभोक्तावादी अपसंस्कृति का जाल बिछाते हुए मनुष्य के जीवन पर ही प्रश्न खड़ा कर दिया है। खरीद-फरोख्त वाली पूंजीवादी राजनीति, अधिकाधिक सामग्री संचयी भोगवादी समाज, मानवीय विचलन, अपचलन से भरी हुई संस्कृति वैश्वीकरण की ही उपज है।

चुनौती सृजनात्मकता की है। मूल्य जर्जर बाजार में साहित्य और साहित्यकारों के लिए बहुत कम स्थान बचता है। छप तो बहुत कुछ रहा है किन्तु गंभीर रचनाओं का अभाव

दिखता है। जो छापना नहीं चाहिए वह भी छप गया है। छपास एक संक्रामक रोग की तरह फैल गया है। पठनीय मनोवृत्ति का ह्रास भी कम नहीं है।

महादेवी वर्मा ने कहा है कि साहित्य जीवन का अलंकार नहीं है, वह स्वयं जीवन है। साहित्यकार सृजन के क्षणों में इस जीवन में जीता है और पाठक पढ़ने के क्षणों में।

इस प्रकार साहित्य में हम जीवन के अनेक गहरे अपरिचित अस्तरों में मनोवृत्तियों के अनेक अज्ञात छायालोकों में जीवित हो कर अपने जीवन को विस्तार, अनुभूतियों को गहराई और चिंतन को व्यापकता प्रदान करते हैं।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं।

बाबू गुलाब राय मानते हैं कि ''साहित्य में व्यक्तित्व छिपाया नहीं जा सकता। उसका निजी अनुभव की प्रेरणा सदैव रहती है। साहित्य और समाज का परस्पर संबंध सर्वविदित है। समाज को समझने के लिए साहित्य में गोंता लगाना आवश्यक है। साहित्यकार की चेतना अपने समाज में अवगहन से गुजरती है। साहित्य को सामग्री समाज से ही मिलती है। अत: समाज का जो रूप होगा वही सच्चे साहित्य में प्रतिबिंबित होगा। साहित्य मे वैविध्यपूर्ण परंपराएं देखी जा सकती हैं। वस्तुत: युग विशेष की परंपराएं नई चुनौतियों को आत्मसात करके ही आगे बढती हैं। साहित्य की परंपराएं किसी एक रंग गंध और स्वाद की हो नहीं सकती, उनमें किसी न किसी प्रकार के प्रयोग या अनुप्रयोग अवश्य होते हैं। लिहाजा इसके साहित्य की परम्पराएं और नई चुनौतियां प्रकारान्तर से परम्परा और प्रयोग का ही अनुशीलन है।

कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊंचे दरजे की होती है। इस संबंध में विचार करते हुए पुन: हमें प्रेमचंद की ये बातें आज पुन: याद करना चाहिए। जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जागृत हो,- जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करें, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।

वस्तुत: जीवन का अभिव्यक्ति ही साहित्य में होता है। यदि हम यह कहें कि साहित्यकार चोर होता है। चोर घरों में झाँकता है और साहित्यकार मनुष्य के हृदय की

गहड़इयों में गोंता लगाता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं इस क्रम में रचनाकार परकाय प्रवेश की प्रक्रिया से गुजड़ता है।

अत: आधुनिक परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की चुनौती भी साहित्यकारों के ही समक्ष है। भारतीय साहित्य में इतिहास, दर्शन और परंपरा का संगम दिखता रहा है। आज के साहित्य में यह संगम सिकुड़ता नजर आ रहा है। समकालीन साहित्यकार के सामने विपुल दायित्व है। उन्हें भारतीय परंपरा के अनुकूल बिना किसी भेदभाव के बिना किसी वाद-विवाद और खेमेबाजी में लिप्त हुए समाज के लिए साहित्य की रचना करने की जिम्मेवारी है और बहुत हद तक यह हो भी रहा है। किसी वस्तु को देखने-समझने का नजरिया अलग-अलग हो सकता है। जीवन बहुआयामी है। उसे किसी एक दृष्टिकोण से देख कर समझना कठिन है। जब हम साहित्य में जीवन जमीन समाज की झलक देखते हैं तो हम उसे कई आयाम से देखते हैं। किसी रचनाकार ने एक कोन से देखा, किसी ने दूसरे कोन से। लेकिन साहित्य के पढ़ने से समस्त जीवन-जगत का एक समग्र छवि देखने को मिलता है।

पिछले एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आँचलिकता, आदि के दौड़ से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की है।

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह ने कहा है -'' ऋषियों ने किंवा हमारे कवियों ने अपने प्राणों के लहू से जिन बातों को लिख छोडा़ है, आज उन्हीं के सहारे हम त्याग में, शांति, बंधन में मुक्ति अथवा विराग में सुहाग पाते है। जो सुचिता, जो संयम, जो श्रृंखला साहित्य में है उन्हें आप लाख ढूंढ़कर भी अन्यत्र नहीं पा सकते! तथापि हमारा अतीत गौरव, हमारा आत्मिक बल, हमारा जीवन सर्वस्व सबकुछ प्राचीन साहित्य में अमर होकर विराजमान है। हमारा समाज किस शिखर पर था? हम कौन थे? हम क्या थे? और क्या है? कहाँ है?''

परिस्थिति क्रमश: बदलती गयी, चाहे वह आधुनिक शिक्षा का दोष हो, वैश्वीकरण का प्रभाव हो, संचार माध्यमों के द्वारा प्रसारित उन अपसंस्कृतियों का प्रभाव हो, किन्तु यह निर्विवाद है कि हमारे आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पीन, वेश-भूषा, भाषा सब में स्पष्ट अंतर आया है। साहित्यकार भी इस चकाचौंध से नहीं बच पाए हैं। आधुनिकता की होड़ में पुराने मूल्यों को हमने उठाकर ताक पर रख दिया। उसे मानने में आधुनिकतावादी चिंतन पर आघात पहुंचता है। और हमने नये मूल्यों की स्थापना नहीं की। जो की उसमें

भारत की अपनी छवि धूमिल है। हमने स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता मान लिया। स्वानुशासन नाम की कोई चीज नहीं रह गयी। हम अपने वास्तविक रूप से भटक गए हैं, जब हमारी आत्मा के दर्पण पर इस भाग दौड़ के कारण धूलकण आच्छादित हो जाता है तब व्यक्ति को अपना ही स्वरूप धुधँला दिखने लगता है।

मानव से मानव को जोड़ने का दायित्व, पर पीड़ को अनुभव कराने का यह कर्तव्य भी साहित्यकार का ही है ताकि समाज उन उद्देश्यों को लेकर चल सकें, जिसमें स्वस्थ मन और स्वस्थ आत्मा से युक्त मानव एक दूसरे से समरसता वादी इस सामासिक संस्कृति का निर्वाह कर सकें। साहित्य को अपना यह दायित्व नहीं भूलना चाहिए। आधुनिकता आवश्यक है किन्तु अपनी परंपरा का सुगंध भी जरूरी है।

प्रेमचंद्र का यह कथन आज भी उतना ही प्रासंगिक है– ''साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का समान जुटाना नहीं है। उसका दर्जा इतना न गिरायें। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली ईकाई नही है, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुयी चलने वाली सच्चाई है। किन्तु आज साहित्यकार भी अपने इस महती कर्तव्यों को भूलकर मात्र यह ढूढ़ने में लगे रहते है कि आजकल किधर की हवा है ''कौन सा नवीन फैशन है, पाठकों की कैसी रूचि है, यही ढूढ़ते–ढूढ़ते लेखक व्यस्त रहते हैं।

इस आशा के साथ कि सत्य कि एक चिनगारी, असत्य के पहाड़ को भस्म करने में सक्षम है, हमें सकर्म प्रतीक्षा करना होगा। हमारी संस्कृति आशावादी है, हमारी नीति गीता के आलोक में केवल कर्म करते जाने की है, फल की चिन्ता किए बिना हमें अपनी रचनात्मकता की धार तेज रखना है। हमें किसी फ्रेम या खास चश्में से समाज को नहीं देखना है। वह जैसा है वैसा दिखे। उसे जैसा होना चाहिए वह भी दिखे।

कलानाथ मिश्र

कबीर की क्रांतिकारिता में नारी का पेंच

बलराम तिवारी

कबीर में विरोधी आस्था को लेकर आत्मसंघर्ष बहुत तीव्र है। उनमें जाति-बोध भी है और जाति-विरोध भी। कबीर बार-बार स्वयं को जाति का जुलाहा कहते हैं। यह 'जुलाहा' शब्द जाति का बोधक भी है (रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हा, जुलाहा जाति कमीनी); जीव का भी (जोलहा बीनहु हो हरिनामा, जाके सुर नर मुनि धरै ध्याना) और ब्रहा का भी (अस जोलहा का मरम न जाना, जिन जय आयस पसारिन्हि ताना)। कबीर जुलाहा का लाख प्रतीकार्थ फैलाएँ पर संस्कारवश या सामाजिक प्रताड़नावश उनकी वाणियों में जाति-बोध संकेतित होता है।

मध्यकाल में संतकाव्यधारा ने कविता को अभिजात वर्ग की रूचि और मनोविनोद के एकाधिकार से बाहर निकालकर उस बेपढ़े दलित-बंचित वर्ग से जोड़ा जिन्हें काव्य-सृजन एवं काव्या स्वादन के लिए असमर्थ मान लिया गया था। कबीर, रैदास, दादू, सेना, सदना आदि इसी वर्ग से आकर ऐसा अलख जागाते है कि भक्ति, कविता और समाज की संरचना के पुराने विन्यास छिन्न-भिन्न हो जाते है। इनके पास न काव्य भाषा थी, न व्याकरण और न काव्य शास्त्र-धर्मशास्त्र का ज्ञान, पर आखिन देखी, सच्चाईयों को देखने-कहने की तड़प एवं सामाजिक विषमताओं को परखने की अन्तदृष्टि थी। उन्होने भक्ति को सामाजिक आलोचना का रूप देकर अपने बेपढ़े अनुयायियों को अधिकार सजग बनाया। उन्होंने कविता को उन लोगों की जरूरतों से जोड़ा जो आत्म गौरव के साथ-साथ साधना की वैकल्पिक भूमि चाहते थे।

प्रसिद्धि और विवाद का रिश्ता पुराना है। जो कवि और काव्य जितने प्रसिद्ध उनको लेकर उतना ही विवाद। भक्तिकाव्य के दो बड़े कवि है कबीर और तुलसीदास। दोंनो पर से सदियों की आलोचनात्मक मशक्कत के बाद भी विवाद के बादल छँटे नहीं है। कबीर प्रधानतः नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण को लेकर विवाद में रहे तो तुलसी नारी और शूद्र को लेकर। कबीर के विवादों पर विचार करते हुए यह सहज जिज्ञासा होती है कि जो कबीर धर्म और समाज की दूर गैरबराबरी देख लेते हैं, उन्हें

स्त्री पुरूष की गैर बराबरी क्यों नहीं दिखती? किसी सन्यासी की तरह ही वे स्त्री को फटकारते क्यों है? स्त्रियाँ उन्हें सिर्फ कामिनी क्यों दिखती है? पतिव्रता और सती को सराहने के पीछे क्या उनकी दृष्टि स्त्री को अनचाहे पति का गुलाम बनाए रखने की है? यदि उन्हें कामिनी नारियों से चिढ़ है तो वे ईश्वर को काम पीड़ित नारी की तरह ही क्यों पुकारते है।? इसका उतर है–वह आत्म संघर्ष जो उनके या अन्य संतो–भक्तों के मानस में प्राचीनता और नवीनता, परम्परा और नवचितंन, स्वीकृत आस्था एवं नई आस्था के द्वन्द्व को लेकर छिड़ा है। यह आत्मसंघर्ष भक्ति काव्य में जाति बोध और जाति विरोध, निगुर्ण ब्रहम एवं अवतारवाद, ज्ञान और भक्ति, निगुर्ण और सगुण, योग और प्रेम, नारी विरोध एवं नारी संवेदना के समन्वय के रूप में दिखाई पड़ता है।

कबीर में विरोधी आस्था को लेकर आत्मसंघर्ष बहुत तीव्र है। उनमें जाति–बोध भी है और जाति–विरोध भी। कबीर बार–बार स्वयं को जाति का जुलाहा कहते है। यह 'जुलाहा' शब्द जाति का बोधक भी है (रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हा, जुलाहा जाति कमीनी) जीव का भी (जोलहा बीनहु हो हरिनामा, जाके सुर नर मुनि धरै ध्याना) और ब्रहा का भी (अस जोलहा का मरम न जाना, जिन जय आया पसारिन्हि ताना)। कबीर जुलाहा का लाख प्रतीकार्थ फैलाएँ पर संस्कारवश या सामाजिक प्रताड़नावश उनकी वाणियों में जाति–बोध संकेतित होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि कबीर का जाति विरोध पाखण्ड था। जिस जाति–व्यवस्था ने कबीर में भी कमीनी जाति का जुलाहा होने का बोध पैदा किया था, उसे वे जड़–मूल से मिटाना चाहते थे। उसे मिटाने के लिए पहला काम जाति की पुरानी पहचान को खत्म करने का ही हो सकता था। पहचान प्रतिबिम्वित होती है–नाम, गोत्र, उपाधि में । कबीर इन पहचानों को मिटाकर गोत्र, उपाधि विहीन पहचान देने की बजाय उस खाई को पाटने में लगे रहे जो ऊँच–नीच के भेद से पैदा हुई थी। उन्हें डर था कि जाति को तोड़ने के लिए यदि उन्होंने कोई जाति–निरपेक्ष पहचान बनाई तो कहीं एक नया पंथ न खड़ा हो जाय जैसा कि सिक्ख पंथ के साथ हुआ। नानकदेव जी ने अपने अनुयायियों के साथ अपनी जातिगत पहचान खोकर एक नई पहचान अर्जित की। उनकी नई पहचान एक खत्री की नहीं, सिक्ख की थी, जाति का नहीं पंथ की थी। कबीर का रास्ता जाति और पंथ निरपेक्षता का था। वे जाति तोड़कर पथ बनाने के पक्ष में नहीं थे। वे जाति और पंथ दोनों के विरूद्ध थे। फलत: वे भेदमूलकता के विरूद्ध, ही संघर्ष करते रहे। इस संघर्ष में जुलाहा होने की कसक जब–तब उभर आती है। जाति–बोध और जाति विरोध का यही द्वैद्य कबीरदास एवं अन्य संतो में था। इसी कारण 'जाति तोड़ो' अभियान चलाकर भी बहुत सफल नहीं हो पाए। उनके हमले से जाति की जड़े हिलीं तो लेकिन उखड़ी नहीं। अपने जाति–बोध से बगैर मुक्त हुए संपूर्ण जातितंत्र को मिटाने का संघर्ष काल्पनिक ही हो सकता था, व्यावहारिक नहीं। हमारे संतो की सबसे बड़ी दिक्कत यही थी कि वे जाति–व्यवस्था को झकझोरते हुए भी जाति में ही बने रहे। परम्परा और नवचिंतन का यही द्वन्द्वसंतो में अन्तविरोध का कारण है।

रूढ़ि, जाति और सम्प्रदाय कबीर के चिंतन के प्रधान विषय हैं सामाजिक समता को दृष्टिपथ में रखकर वे सारी खामियों को तह–दर–तह खोलते है। नारी उनके चिंतन का एक गौण विषय है। वे उसकी सामाजिक स्थिति पर कम, आध्यात्मिक क्षेत्र में उसकी बाधक या साधक

स्थिति पर अधिक विचार करते हैं। नारी बाधक है कामिनी रूप में और साधक है पतिव्रता और सती रूप में। कबीर कामिनी को काली नागिन (कामिनि काली नागिनी तीनों लोक मंझरि), मधुमक्खी का शहद (कामिनि मीनी साँड की जे छेड़ो तो साइ) आदि कहकर उससे दूर रहने की सलाह देते है। उन्होंने नारी जोरू सुंदरी आदि शब्दों का प्रयोग भी कामिनी अर्थ में किया है। उनकी घृणा का ज्वार इन शब्दों में फूटा है:

नारि नसावै तीनि गुन जेहि नर पासैं होइ

X X X X X X X X

जोरू जूठनि जगत की भले बुरे का बीच

X X X X X X X X

नारी कुंड नरक का बिरला थांभै बाग

X X X X X X X X

सुन्दरि तैं सूली भली बिरला बंचै कोइ

वे कहते है कि स्त्री अपनी से या गैर से उसका भोग सीधे नरक में ढेलता है:

नारी पराइ अपनी, भुगते नरकहिं जाइ।

आगि-आगि सब एक है, देत हाथ जरि जाइ।

कबीर का दर्शन निर्लिप्त-लिप्तता का है। वे संसार में रहते हुए भी संसार से विमुखता की बात करते हैं। उनकी दृष्टि भोजन और भार्या के उपयोग पर है, योग पर नहीं। नारी जहाँ भोग विवश बनाती है, कबीर नहीं उसे माया कहकर दुत्कारते है। उनके अनुसार यह माया रूपी कामिनी क्या देवता, क्या भक्त, क्या योगी-सबको हरि से हराम करती है: 'कबीर माया पापिनी, हरि सौं करै हराम'। कामिनी माया का सबसे प्रभावशाली रूप है। उन्होंने लिंग साम्य के कारण भी माया को कामिनी, डाकिनी, मोहिनी, पापिनी आदि का पर्यायवाची बना दिया है। कबीर नारी का लेकर इतने उग्र इसलिए है कि वे साधना के क्षेत्र में पुरूष-दृष्टिकोण से स्त्री को देखते है और उसे साधना में बाधक मानकर सारे अशोभन विशेषण उस पर आच्छादित कर देते हैं। नारी पर उनके पुरूषवादी दृष्टिकोण को सख्त बनाने में मारतबाद की भी अहम भूमिका है।

पुरूषवर्चस्ववादी समाज में नारी को माया माननेवाला पुरूषवादी दृष्टिकोण पारम्परिक एवं समाज स्वीकृत रहा है। परनारीगमन के विरोध के सवाल पर भी समाज एकमत रहा है। कबीर पर इन सामाजिक धारणाओं का प्रभाव था। वे नारी को माया कहकर भोगवादियों को हतोत्साहित करना चाहते थे ताकि वह उनके यौन उत्पीड़न से मुक्त हो सके। इससे भी उन्हें संतोष नही होता है तो वे धार्मिक भय दिखाकर दूसरों की बहू-बेटियों पर नजर रखनेवालों को चारित्र का पाठ पढाते है। समाज में नारी का पक्ष कमजोर था वह भोगवादियों के शिकार का विषय थी। उसकी अनिच्छा के बावजूद उन्हें रति के लिए मजबूर किया जा सकता था। उसे यौनशोषण और उत्पीड़न से बचाने के लिए कबीर परनारीगमन के दुष्परिणामों को दिखाकर कामी पुरूषों को सावधान करते है।

परनारी राता फिरैं चोरी बिढ़ता साँहि।
दिवस चारि सरसा रहैं, अंति समूला जोहि।
X X X X X X X X
परनारी के राचनैं, औगुन है गुन माँहि
खार समुद मैं माछली, केती बहि-बहि जांई।।

खास बात यह कि भय और लज्जा हमारे पुराने समाजिक-मूल्य निर्धारक है। मध्यवास में सांस्कृतिक जागरण ने चरित्र-शोधन के लिए भय जागरण को आधार बनाया तो 19 वीं शताब्दी के नवजागरण के लज्जा-जागरण को।

प्रेम ईश्वर से हो या पत्नी का पति से कबीर का जोर एक निष्ठता पर है। पति-पत्नी की पारस्परिक निष्ठा की सुखद पारिवारिक जीवन का आधार है। कबीर नैतिकता विहीन, समर्पण-शून्य प्रेम को छल मानते थे। पति को अपने प्रति उदासीन देखकर पड़ोसियों को रिझानेवाली स्त्रियों को भी सचेत करते है:

जौ पै पिय के मनि नाहीं भाए। तौ का परोसनि कै हुलराए
जौ पै पतिव्रता ह्वै नारी कैसे ही रहै सो पियहि पियारी।
तन मन जोवन सौथि सरीरा ताहि सुहागिनि कहै कबीरा।

भक्तों ने विनय के पदों में भगवान से आत्म निवेदन के साथ-साथ दासों के से जीवन जीनेवाले के दुःख निवेदित किए थे। कबीर ने वही काम विरह के पदों में किया है। उनके विरह के पद आत्मनिवेदन के बहाने नारी-दुःख का साक्षात्कार है। कबीर नारी की सामाजिक स्थिति में अपने साधनात्मक वर्तमान की दुःख-दशा देखेते हैं। उनकी व्यथा को अपनी व्यथा बनाकर उस प्रिय की याद करते है जिसकी कठोरता पिघल नहीं रही। जब वे नारी बनकर बोलते है तब उनके 'प्रिय' का अर्थ ब्रह्मण भी है और पति भी।

पतिव्रता नारी के पतिव्रता का ही चरम रूप है सतीत्व। कबीर अपने प्रभु प्रेम का आदर्श इसी सती को ही बनाते है। सती की हर साँस पति के लिए है। वह पति के लिए जीती है। और लोगों को मृत्यु बुलाना भेजती है, सती तो मृत्यु को ही बुला भेजती है। उसका बल सत का है:

सती जरन कौ नीकसी, पउि का सुमिरि सनेह।
सबद सुनत जिय निकसा, भूलि गई सुधि देह।।

कबीर की दृष्टि में सती एकनिष्ठता का चरम मानक है। वे सती भाव से ईश्वर से प्रेम करते है। इससे आत्मविसर्जन वाली उसकी निष्ठा तुरत समझ में आती है। सवाल है कि कबीर को सती का सत ही क्यों दिखता है, ढोल-नगाड़ो के बीच उसके शरीर का जलना क्यों नहीं? सती

मिथक या फैंटेसी नहीं है, मध्यकाल का सच है। फिर कबीर सती के सत पर ही क्यों रीझते है, उसके आत्मदाह के भीतर से फूटते करूण क्रदन और आर्त पुकार क्यों नही सुन पाते? सती कर्म एक निष्ठुर कर्म है। यह स्त्री पर पुरूष समाज द्वारा थोपी गई ज्यादती है। कबीर इस नारी को माया कहने या सतीख को सराहने का निश्चय की एक सकारात्मक लक्षणिक अर्थ है, पर सीधे-सीधे यह प्रतिक्रियावादी सोच या समर्थन है। हिंदू समाज ने सती प्रथा द्वारा अपनी अमानवीयता को नारी के गौरव-मूल्य के रूपार में प्रचारित किया। इसके असर से कबीर भी अछूते नहीं रहे। प्रकारांतर से ही सही नारी के प्रति उनकी निष्ठुरता इससे ध्वनित होती है।

कबीर नारी को लेकर हमेशा जड़ और निष्ठुर ही नहीं बने रहे, वे उससे संवेदित भी होते है। साधक कबीर के लिए नारी माया है और सुधारक कबीर के लिए समान का शोषित-पीड़ित अंग। यह दृष्टि-भेद कबीर के भीतर के साधक और सुधारक के द्वन्द का प्रतिफल है। यह अजीब है कि उनका सुधारक रूप भी तब जागता है जब ने साधना की चरम दशा में होते हैं। भवतनम्यता की इस दशा में ने अपना पुरूष अस्तित्व भूल जाते हैं तथा स्त्री रूप धारण कर ईश्वर को पुकारते है। वे एक विरहिणी की तरह अपनी प्रेम-व्यथा और मिलनोत्कंठा का इजहार करते है। यहीं उनकी पीड़ा में तत्कालीन नारी की पीड़ा बोलती है। विरह में धुँआती जलकर कोयला हुई नारी पुरूष की निर्दयता को मर्म पर ही नहीं, शरीर पर भी झेल रही थी। वह अपना दु:ख नारी-वर्ग से ही कह सकती थी क्योंकि एक के दु:ख से दूसरे का दु:ख भिन्न नहीं था। कहने-सुनने के क्रम में एक ही दु:ख-कथा दूसरों के विरह दु:ख को उभार कर सामूहिक दु:ख कथा का रूप ले लेती है। कबीर इसे ही 'जलहरि' अर्थात् जलाशय के प्रतीक के स्पष्ट करते हैं। विरहाग्नि बुझाने बुझाने के लिए जीवात्मा जलाशय के पास जाती है पर उसकी विरहाग्नि से सम्पूर्ण जलाशय ही लहर उठता है। यहाँ जलाशय निर्माण पुरूषों के पीड़ित नारी-वर्ग का ही प्रतीक है:

बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जलहरि जाउँ।
सो देखा जलहरि जलै, संतो कहा बुझाँउ।।

भक्तों ने विनय के पदों में भगवान से आत्म निवेदन के साथ-साथ दासों के से जीवन जीनेवाले के दु:ख निवेदित किए थे। कबीर ने वही काम विरह के पदों में किया है। उनके विरह के पद आत्मनिवेदन के बहाने नारी-दु:ख का साक्षात्कार है। कबीर नारी की सामाजिक स्थिति में अपने साधनात्मक वर्तमान की दु:ख-दशा देखेते हैं। उनकी व्यथा को अपनी व्यथा बनाकर उस प्रिय की याद करते है जिसकी कठोरता पिघल नहीं रही। जब वे नारी बनकर बोलते है तब उनके 'प्रिय' का अर्थ ब्रह्मण भी है और पति भी। उस प्रिय भी अनुपस्थिति में बिना अपराध के भी किस तरह नारी कलंकित की जाती थी, उसकी अस्मत लुट जाती होगी-इसका अभास इस पद में होता है: ''ऐसी नगरिया में केहि, विधि रहना/नित उठि कलंक लगावै सहना/ कहै कबीर छाड़ि मैं मैरा उड़ि गया हाकिम/लुटि गया डेरा।''

कबीर के जिन पदों को रहस्यात्मक एवं अद्वैत मिलन की उत्कंठा मानकर रस दिया जाता है उन्हीं में कबीर की नारी-संवेदना प्रकट हुई है। एक सामान्य गार्हस्थिक परिवेश में नारी की चिंता कई परतों में समाई हुई है। उसे दीर्घकालिक प्रतीक्षा और मौन विरह-विकलता के बाद मिलन का क्षण उपलब्ध भी होता है तो जगी ननद-जेठानियों के कारण हव निष्पद नहीं रह पाता। अपनी

सीमाओं के बीच भी सुख तलाशने की उसकी इच्छा कितनी प्रबल है, कटु यथार्थ की बीच पलते हुए सपने पल भर के लिए कितना सूकून देते हैं!

ए अँखिया अलसानी, पिया हो रोज चलो।
सम्भ पकरि पतंग अस डोलै, बोलै मधुरी बानी।
फूलन रोज बिसाइ जो राख्यौ, पिया बिना कुम्हलानी।
धीरै पाँव धरों पलंगा पर जागत ननद-जिठानी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, लोकलाज बिछलानी।

कबीर ने नैहर, ससुराल, विवाह, बरात का जो रूपक गढ़ा है, उन सबके क्षणिक अर्थ आघ्यामिक है लेकिन उनके अभिधात्मक अर्थ को नकार कर उनकी युगीन चिंता को नहीं समझा जा सकता। उन्होंने अपने रूपकों में जो अनुभव संयोगा है, वह उनकी आँखों के आगे रोज-रोज का घटित सच है। सामान्य पाठक को इस खाँटी अनुभव में रस मिलता है। कबीर प्रतीक विछाकर जागति स्त्री पुरूष सम्बन्धों से आघ्यात्मिक अर्थ निकालते हैं, पर पाठक के हृदय को स्त्री सुलभ सम्बन्ध की छूता है। उसके मानस में ननद, जेठानी, सास-ससुर, नैहर, ससुराल में सिंची-बंधी नारी सजीव हो उठती है।

कबीर ने स्त्री को ज्ञान की वस्तु के रूप में भी देखा और ज्ञाता के रूप में भी। जब वे उसे ज्ञान की वस्तु के रूप में देखते है तो वे मर्दवाद का समर्थन करते हैं। स्त्री वहाँ गर्हित एवं अग्राह्ण है। जब ने उसे ज्ञाता के रूप में पेश करते है एवं स्वयं नारी की भूमिका में उतर आते है। वे एक स्त्री की तरह सोचते-विचारते है। नारी के समकालीन यथार्थ को व्यंजित करने के लिए उन्हें यह जरूरी लगा कि नारी बनकर भी नारी का दु:ख अनुभव किया और कराया जा सकता है। यह ठीक है कि नारी रूप में ईश्वर से सम्बन्ध-स्थापन कांत भाव की साधना है। सम्बन्ध रूपा भक्ति में यह परम्परा पुरानी है पर कबीर केवल परम्परा का अनुमोदन करनेवाले कवि नहीं थे। नारी रूप में उनकी गुहार नारी के आकांक्षित सुख एवं प्रस्तुत दु:ख का ही प्रत्यावलोकन है। वे इन्हें ईश्वर को भी दिखाना चाहते थे और समाज को भी। नारी आन्दोलन से जुड़ी महिलाएँ मानती है कि पुरूषों का नारी सम्बन्धी चिंतन पुरूष हित में निर्धारित है। उसमें स्त्री ज्ञान की वस्तु मात्र है, ज्ञाता नहीं। ऐसी महिलाएँ भी मानेंगी कि कबीर का स्त्री बनकर उसके स्वप्न और सच को व्यक्त करना महज परकाया प्रवेश नहीं है कायान्तरण है यह महज कांत भाव की साधना नहीं हैं, मान की भूमिका पर स्त्री हो जाना है। यह स्त्री दृष्टि से स्त्री का साक्षात्कार है। यहाँ स्त्री बनकर कबीर उसे ज्ञाता के आसन पर बिठा देते है। पुरूष कोण से स्त्री उन्हें सिर्फ कामिनी दिखती है, लेकिन जव वे स्त्री भाव ईश्वर को याद करते है तब स्वयं कामिनी जैसा व्यवहार करते हैं। कोण बदलते ही दृष्टि बदल जाती है। यथा:

1. बालम आउ हमारै गेह रे
तुम्ह बिनु दुखिया देह रे।।
सब कोइ कहै तुम्हारी नारी मोकौ यह अरेह रे।

एकमेक ह्वै रोज न सोवै तब लगि कैसा नेह रे।।
अन्त न भावै नींद न आवै ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यौं कामी कौ कामिनि प्यारी ज्यों प्यासे कौ नीर रे।।
है कोई ऐसा पर उपगारी हरि सौं कहै सुनाइ रे।

2. दुलहिनी गावहु मंगलाचार।
हम घरि आए राज राम भरतार।।
तन रत करि मैं मन रति करिहौं पांचउ तत्र बराती।
राम देव मोरै पाहुनै आए मैं जीवन मैं माती।।

कबीर स्त्री-पक्ष से धर्मों के समाज शास्त्र एंव नीतिशास्त्र पर विचार करते हैं। उनकी राय में हिन्दू धर्म और इस्लाम-दोनों पुरूष केंद्रित धर्म है। दोनों धर्मों में स्त्री की स्थिति खरबूजे-सी है। पिता या पति की जाति या मजहब से उसकी जाति या मजहब निर्धारित होता है। जाति या महजब के निर्धारक तत्वों को निर्मित करते हुए स्त्री को ध्यान में नहीं रखा जाता। इस्लाम में मुसलमान होने का निर्धारक तथ्य है-सुन्नत। पुरूषों की सुन्नत होती है स्त्रियों की नहीं। स्त्रियों सुन्नत के अभाव में मुसलमान नहीं होती, हिन्दू ही बनी रहती है क्योंकि हिन्दुओं की सुन्नत नहीं होती। हिन्दुओं में ब्राह्मण होने का निर्धारक तत्व है-जनेऊ। जनेऊ पुरूष पहनता है स्त्रियाँ नहीं। जनेऊ के अभाव में स्त्री ब्राह्मण न होकर शूद्र ही बनी रहती है क्योंकि शूद्र जनेउ नहीं पहनता। ब्राह्मण शूद्र रह गई इसी स्त्री का परोसा खाता है, फिर ब्राह्मणत्व रहा कहाँ ? यथा:

सुनति कराइ तुरूक जौ होनां, तौं औराति कौं का कहिए।
अरध सरीरी नारि न छूटै, तातै हिन्दू रहिए।।
धारि जनेऊ बाह्मण होता, मेहरिहिं का पहिराया।
वै जनम की सूद्रि परोसै, तुम पाँड़े क्यों खाया।।

यहाँ ब्राह्मणों और मौलवियों से कबीर का विवाद नारी को लेकर है। उन्होंने देख लिया था कि धर्मों के तराजू में पुरूष पक्षपात का पासंग है। स्त्रियाँ इस तराजू पर तुलने के लिए हल्की नहीं थी, वे हल्की पड़ी इस प्रसंग के कारण, जैसे वर्णवाद के प्रसंग के कारण हिन्दुओं में शूद्र और मुसलमानों में पसमांदा हल्के पड़े। कबीर सामाजिक एक की लड़ाई में पासंग के शिकार स्त्री, शूद्र और पसमांदा के साथ खड़े हैं लेकिन एक पूर्वग्रह के साथ।

बलराम तिवारी, अवकाश प्राप्त प्रो., पटना विश्वविद्यालय मजिस्ट्रेट कॉलोनी,
आशियाना नगर, पटना–800025

लघु कथा शिल्प एवं संवेदना

गणेश प्रसाद

'लघु कथा' का विकास मनोरंजन एवं जीवन के प्रति छेदा नेतृत्व आग्रह से मुक्ति की प्रक्रिया में एक ठोस यथार्थबोध की आसक्ति में हुआ है। 'लघु कथा' में आज के जीवन की समस्त मित्रों एवं विसंगत यथार्थ को एक वैचारिक झनझनाहट के साथ प्रस्तुत करने की व्याग्रता साफ देखी जा सकती है इस व्याग्रता की अभिव्यक्ति ने धारदार 'व्यंग्य' को अपना हथियार बनाया हैं। यह सच है कि विद्रुपता और विसंगति की अभिव्यक्ति में 'व्यंग्य' साथ दे सकता हैं। संप्रेषण के पुरातन शास्त्रीय शस्त्र अपनी धार खो चुके हैं। नैतिकता और आदर्श की ओर अपनी बांहें फैलानेवाली 'कथा' 'लघुकथा' में आकर वैचारिक ओजस्विता में परिवर्तित हो गई है।

"आधुनिक कहानी का स्रोत अंग्रेजी साहित्य है हिंदी साहित्य में लिखित आधुनिक कहानी बांग्ला के माध्यम से आई है अंग्रेजी में जिसे शॉर्ट स्टोरी कहते हैं वहीं बंगला में गर्ल्स और हिंदी में कहानी नाम से प्रचलन में आया अंग्रेजी की शॉर्ट स्टोरी के लिए हिंदी में छोटी कहानी या लघुकथा संज्ञा का प्रयोग किया गया आधुनिक युग में लघु कथा सब कहानी से अलग पर कहानी से ही संबंधित विशेष सुविधा के लिए प्रयुक्त होता है कहानी के कथा पाठ वातावरण या देशकाल पात्रों की पारस्परिक ता पात्रों का ब्राह्मण तथा आंतरिक द्वंद संघर्ष की पराकाष्ठा, चरमसीमा एवं संघर्ष की जटिलताओं क विघटन पर आधृत विकास रेखा की उपस्थिति जैसी तात्विक संरचनात्मक परिणति की आवश्यकता नहीं होती। कहानी को वर्षाकाल में वृष्टि की प्रातिक रचना प्रक्रिया के रूप में लिया जा सकता है जिसमें विस्तार और तात्विक क्रम की अपेक्षा होती है। ठीक इसके विपरीत 'लघु कथा' घटाओ के बीच कौंधती हुई बिजली है जिसका स्वर्णिम तापलेख जितना आकर्षक होता है उतना ही विध्वंसक भी।

हिंदी भाषा में कथा की परंपरा वेदों, पुराणों, इतिहास, रामायण, महाभारत, बौद्ध संबंधी, आवधानों, जातक कथाओं, गुणादय की वृहतकथा, पंचतंत्र, हितोपदेश एवं कहानी से होती हुई आज की लघुकथा के रूप में प्राप्त होती है कथा से लघु कथा की यह यात्रा

विभिन्न प्रडावों से गुजरती हुई आज किस रूप में हमें देखने को मिलती है वह अपनी तथ्यात्मक तथा शिल्पगत विशिष्टता के कारण विशिष्ट आलोचनात्मक दृष्टि की मांग करती हैं।

'लघु कथा' का विकास मनोरंजन एवं जीवन के प्रति छेदा नेतृत्व आग्रह से मुक्ति की प्रक्रिया में एक ठोस यथार्थबोध की आसक्ति में हुआ है। 'लघु कथा' में आज के जीवन की समस्त मित्रों एवं विसंगत यथार्थ को एक वैचारिक झनझनाहट के साथ प्रस्तुत करने की व्याग्रता साफ देखी जा सकती है इस व्याग्रता की अभिव्यक्ति ने धारदार 'व्यंग्य' को अपना हथियार बनाया हैं। यह सच है कि विद्रुपता और विसंगति की अभिव्यक्ति में 'व्यंग्य' साथ दे सकता हैं। संप्रेषण के पुरातन शास्त्रीय शस्त्र अपनी धार खो चुके हैं। नैतिकता और आदर्श की ओर अपनी बांहें फैलानेवाली 'कथा' 'लघुकथा' में आकर वैचारिक ओजस्विता में परिवर्तित हो गई है। फलत: इसमें 'लघु कथा' में कथात्मक विस्तार की अपेक्षा कथ्यात्मक गांधी गंभीर्यसूत्रता का आविर्भाव हुआ है। यही कारण है कि 'लघुकथा' इतनी विराटस्वरूपा तथा लघु हो गई है कि वह दो-चार

हिंदी कहानी के विकासक्रम में ही 'लघुकथा' के आविर्भाव का संयोग बना। प्रेमचंद और प्रसाद की बहुत-सी कहानियाँ 'लघुकथा' के अंतर्गत आती हैं। प्रेमचंद की 'नशा','मनोवृति 'जादू' और 'दो सखियाँ' तथा प्रसाद की 'अघोरी का मोह' 'गुधडी के लाल' 'करुणा की विजय' 'प्रलय' 'प्रतिमा' 'दुखिया' और 'कलावती की शिक्षा' आदि कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से 'लघुकथा' के अंतर्गत ही आती है। इन कहानियों में समय यथार्थ का आवेगपूर्ण वैचारिक संप्रेषण संक्षिप्तता के साथ हुआ है।

वाक्यों में संप्रेषणीय के वैचारिकता को अनुभवगम्य भव्यता प्रदान कर सकती है। इसी अर्थ में 'लघुकथा' आत्मीय अनुभवों की 'वैचारिक सुक्ति' आत्मिदृष्टि और 'लोकसंवाद की महत्वपूर्ण कथनभंगिमा यानी लोकोक्ति कहा जा सकता है। पूर्ववर्ती कथाशिल्प में प्रसंगविस्तार एक निष्कर्षात्मक रचनात्मक सुक्ति में रचित होता था, पर आज लघु कथा कथाकार के यथार्थ अनुभव पर आधृत एक जीवंत सुक्ति के रूप में प्रणीत होती है। जिस प्रकार दुग्ध मथित होकर नवनीत रूप में अपना सार प्रस्तुत करता है उसी प्रकार की जीवनानुभव मथित होकर वैचारिक सुक्ति या लोकोक्ति का निर्माण करता है ठीक इसी प्रकार जीवन के बहुविध यथार्थ यथार्थ प्रसंग मथित होकर सार रूप में 'लघु कथा' का निर्माण करते हैं। सुक्ति जीवनदृष्टि का सार कथन है और लघु कथा अपने नैसर्गिक रूप में प्रभाववादि सुक्ति। कहा जा सकता है कि 'लघु कथा' प्रतिरोध पर खड़ा विचारनाभ है। इसलिए तो इसकी लघुकाया में अपरिमित विस्तार का ऐसा रचनाशील संकुचन है जिसके विश्लेषण से संपूर्ण सामाजिक यथार्थ का सार्थक बिंब अपने आप अभिव्यक्त

हो जाता है। इस अर्थ में 'लघु कथा' व्यंग्य के लिए एक महत्वपूर्ण व्यंग्यविधान है। इस व्यंग्यविधाान को साधानेवाली लघुकथाकार अनिवार्यतः अपनी साधाना में सफल होता है। व्यंग्य में विडंबना, विसंगति, और विद्रूपता को उद्घाटित करने का अपार क्षमता होती है, इसीलिए लाघुकथाकार इसके सम्यक विनियोग करता है और अपने सामाजिक बोध को व्यंजक बनाने में सफल होता है। लघुकथाकार की थोड़ी-सी भी चूक व्यंग्य को हास्य में बदल देती है जो लघु कथा का भी उद्देश्य नहीं होता। हाँ, हास्य में भी यदि पीड़ा प्रतिरोधात्मक मौखर्य में बंधी हो, तो वहां भी 'लघुकथा सफल हो सकती है, पर इसे साधना सरल नहीं है।

हिंदी साहित्य विधा उस वैचारिक उद्देश्य तथा सामाजिक दर्शन के प्रभाव में गढी जा रही है जिसमें प्रतिरोधात्मक ऊर्जा अपनी विस्फोटित कौंध से पाठकिय संवेदना को चमकृत कर देती हैं। इस अर्थ में 'लघु कथा' एक वैचारिक परिणति है जो ज्ञानात्मक संवेदना को जागृत करने के लिए अपने बौद्धिक संस्कार के साथ सर्वदा या यत्नवान रहती है। 'लघुकथा' अपने लघुता में वामन के पगों द्वारा मापे गए असंभव अकल्पनीय विस्तार को समेटने की क्षमता रखती है, बशर्ते इसमें समय-संदर्भ से टकराने, जीवन जगत के जटिल प्रसंगों को अपने अनुभव क्षेत्र में उतारने तथा उनकी अभिव्यक्ति का व्यंजनापूर्ण कौशल हो। जीवन के यथार्थ प्रसंगो का वैचारिक सारांश ही 'लघुकथा' है। प्रसन्नता है कि हिंदी लघुकथाएं समय संदर्भों को वैचारिक अभिव्यक्ति देकर पाठकीय चेतना को झकझोरने में सफल हो रही है। हिंदी लघुकथाकारों की एक लंबी जमात है जो समय की हर हरकत से परिचित है और इसे अपनी लघुकथा में व्यंग्य के स्तर पर प्रतिष्ठित करने में संलग्न है।

हिंदी कहानी के विकासक्रम में ही 'लघुकथा' के आविर्भाव का संयोग बना। प्रेमचंद और प्रसाद की बहुत-सी कहानियाँ 'लघुकथा' के अंतर्गत आती हैं। प्रेमचंद की 'नशा',' मनोवृति 'जादू' और 'दो सखियाँ' तथा प्रसाद की 'अघोरी का मोह' 'गुधडी के लाल' 'करुणा की विजय' 'प्रलय' 'प्रतिमा' 'दुखिया' और 'कलावती की शिक्षा' आदि कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से 'लघुकथा' के अंतर्गत ही आती है। इन कहानियों में समय यथार्थ का आवेगपूर्ण वैचारिक संप्रेषण सँक्षिप्तता के साथ हुआ है। जैनेंद्र और 'अज्ञेय' ने भी भावात्मक को अतिक्रमत कर वैचारिकता को महत्व देते हुए आवेगपुर्ण 'लघुकथा' शिल्प की अनेक कहानियां लिखी हैं। मनोरंजन और भावना को धकेलते हुए वैचरिकता ने जब कहानी क्षेत्र में पदार्पण किया तब लघुकथा का जन्म हुआ।

गणेश प्रसाद, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बी आर ए बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
मोबाइल नंबर : 9801574049

प्रेमचंद और रेणु के उपन्यासों में गाँव

डॉ. सुनील कुमार पाठक

फणीश्वरनाथ रेणु 'हिन्दी कथा-साहित्य के एक ऐसे युगान्तकारी रचनाकार है, जिन्होंने न केवल प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाया, बल्कि उसे और अधिक समृद्ध और सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों और उद्वेलनों को पूरी व्यापकता और समग्रता में चित्रित करने का सार्थक प्रयास किया है। डॉ0 नामवर सिंह की तो मान्यता है कि ''मैला आँचल का प्रकाशन हिन्दी उपन्यास के इतिहास में एक घटना है ।

हिन्दी कथा-साहित्य की दो अमर विभूतियाँ-मुंशी प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ 'रेणु' - कई अर्थों में एक-दूसरे के पूरक रचनाकार हैं। दोनों के कथा-विन्सास में कतिपय वैचारिक वैभिन्यों के बावजूद, एक प्रबल समानता यह है कि दोनों ने ग्राम्य-जीवन को अपने कथा-संसार का उपजीव्य बनाया है। भारतीय गाँव-अपनी समस्त बहुरूपता और विसंगतियों में, विशिष्टता और विच्छितियों में प्रेमचंद और रेणु -दोनों के कथा-संसार में उभरे हैं । यह अकारण नहीं कि **डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय** ने रेणु को प्रेमचंद की परम्परा का एक महत्वपूर्ण रचनाकार बताते हुए 'मैला आँचल' को 'गोदान' के बाद एक सर्वथा प्रगतिशील रचनात्मक औपन्यासिक अवदान स्वीकार किया है । डा0 उपाध्याय के शब्दों में **''प्रेमचंद की परम्परा में दशकों बाद यह पहला उपन्यास लिखा गया है, 'गोदान' के जोड़ का है, सर्वथा प्रगतिशील ! ..... गाँवों के घिनौने वातावरण को मिथ्या कर उनके काल्पनिक चित्र उपस्थित करने वालों पर करारी चपत है ..... ।''**

फणीश्वरनाथ रेणु की दो महत्वपूर्ण कृतियाँ-'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' हिन्दी कथा-साहित्य की ऐसी अनमोल धरोहरें हैं, जिनकी चर्चा बगैर हिन्दी उपन्यास - जगत् के कथ्य-वैविध्य पर सार्थक विवेचन असंभव होगा। दरअसल, इन दोनों कृतियों के कथा-विस्तार को एकमेक कर समग्रता में देखे बगैर ग्रामीण जीवन की संपूर्ण छवि प्रकट नहीं हो सकती । 'मैला आँचल' में अगर धरती-पुत्रा

की गाथा का मार्मिक अंकन है, तो 'परती परिकथा' में ग्रामीण जनाकांक्षा और भूमि-समस्या की नयी समीचीन व्याख्या सहज द्रष्टव्य है । सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ0 सुरेन्द्र चौधरी के शब्दों का अगर सहारा लिया जाय तो कहा जायेगा कि -'' 'मैला आँचल' जहाँ ग्रामकथा है, वहाँ 'परती परिकथा' भूमि-संबंधों के अंतर्विरोधों से आगे बढ़ी भूमि-संघर्ष की कथा है । 'मैला आँचल में भूमि-संघर्ष की एक झलक मात्र मिलती है, पर 'परती परिकथा' सम्पूर्णत: संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी गई एक महत्वपूर्ण रचना है ।'' सच पूछा जाये तो 'परती परिकथा' सामन्तवादी भूमि-व्यवस्था से किसान-वर्ग की संघर्षशीलता का मुखरित अभिलेख है।

मजदूरों से होकर किसानों तक पहुँची वर्ग-चेतना की अनुगूंज 'मैला आँचल' में भी सुनाई पड़ती है, परन्तु 'परती-परिकथा' में यह चेतना अनुगूँज मात्र नहीं है -वरन इस कृति का मूल कथ्य ही भूमि-समस्या और किसानों की संघर्षशीलता है ।

फणीश्वरनाथ रेणु 'हिन्दी कथा-साहित्य के एक ऐसे युगान्तकारी रचनाकार है, जिन्होंने न केवल प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाया, बल्कि उसे और अधिक समृद्ध और सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों और उद्वेलनों को पूरी व्यापकता और समग्रता में चित्रित करने का सार्थक प्रयास किया है। डॉ0 नामवर सिंह की तो मान्यता है कि ''मैला आँचल का प्रकाशन हिन्दी उपन्यास के इतिहास में एक घटना है। इसके भाषा और रूप-विधान में तो नयापन है ही, आजादी के बाद के भारत के मिजाज को व्यक्त करनेवाला यह पहला उपन्यास है- आजादी के बाद बदलते हुए गाँवों की तस्वीर और इसके बीच गाँधीवादी बावनदास की शहादत ध्यान देने योग्य है ।''

प्रेमचंद और रेणु की कृतियों पर विचार करने के क्रम में कुछ वैसे आलोचक जो कतिपय समानताओं के बावजूद, 'मैला आँचल' को 'गोदान' की भाँति 'क्लासिक रचना' मानने से इंकार करते हैं, वे भी यह स्वीकार करते हैं कि प्रेमचंद के गाँव का सरोकार रेणु के उपन्यासों में नया आयाम ग्रहण करता दिखाई पड़ता है । नेमिचंद्र जैन, जो 'गोदान' और 'मैला आँचल ' के साम्य को केवल ऊपरी मानते हैं, वे भी सहज रूप से यह स्वीकार करने में नहीं हिचकते कि 'मैला आँचल में रेणु ने पूरी तल्लीनता के साथ ग्रामीण जीवन की तमाम खूबसूरती और खामियों को, विशिष्टता और विद्रुपताओं को पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त होने का पूरा मौका दिया है । नेमिचंद्र जैन के शब्द हैं - ''वास्तव में 'मैला आँचल' की विशिष्टता इसमें नहीं है कि उसमें देहाती जीवन का बहुत गहरा अध्ययन है, अथवा सामाजिक समस्याओं और उनके निदान के दार्शनिक आधार उसमें मौजूद हैं, अथवा युग-युग -व्यापी जीवन -सत्यों का उद्घाटन लेखक कर सका है । उसकी विशिष्टता है उस अपूर्व आत्मीयता में जिसके साथ लेखक ने गाँव के जीवन की समस्त कटुता और संगीत को, सरलता और विकृति को, स्वार्थपरता और सामाजिक एकसूत्रता को, अज्ञान और मौलिक नैतिक संस्कार को संजोया है। इतनी तरल भावावेशपूर्ण उत्कटता से शायद ही किसी ने ग्रामीण जीवन को देखा हो-शरद और प्रेमचंद ने भी नहीं, ताराकांत बनर्जी ने भी नहीं। देहाती जीवन को लेकर लिखे जाने वाले साहित्य को इस उपन्यास की यह सबसे बड़ी देन है ।''

दरअसल, रेणु की जड़ें गाँवों की जिंदगी में पैठी हुई हैं - छोटे-बड़े कस्बानुमा धड़कते-फड़कते गाँव रेणु के उपन्यास और उनकी कहानियों में पूरी जीवंतता के साथ मौजूद हैं।

मार्क्स ने ग्राम-समुदायों को कभी 'नदी का द्वीप' कहा था -बिल्कुल जड़ और निरीह। परन्तु कालान्तर में इन गाँवों में भी कुछ विचित्र शक्तियों का समाहार देखने को मिला। लम्बे और कष्टकारी दौर से गुजरने के बावजूद रेणु के समकालीन गाँवों ने आजादी मिलने पर भावनात्मक रूप से ही सही, पर एक नई अँगड़ाई ली। निरीहता के बावजूद उनमें जड़ता नहीं थी । जीवन-रस वहाँ भरपूर था। रेणु के साहित्य में गाँव पूरी संवेदना और प्रतिक्रियाओं के साथ जीवंत हैं। रेणु के कथा-साहित्य को 'आंचलिकता' के दायरे में सीमित नहीं किया जा सकता, चूँकि उसमें स्थानीयता मात्र नहीं है । रेणु आंचलिक कथाकार होकर भी स्थानीय मात्र नहीं रह जाते । रेणु प्रेमचंद की ही भाँति आंचलिक जीवन की जद्दोजहद को भी वृहत्तर सामाजिक-मानवीय संदर्भों में मूल्यांकित करते हैं। प्रेमचंद से रेणु का नैकट्य इस अर्थ में भी है कि वे प्रेमचंद की ही भाँति अपनी कथा-प्रक्रिया में ग्रामीण जीवन के अन्तर्विरोधों का सिर्फ आलोचनात्मक चित्रण ही नहीं करते, बल्कि वे तत्कालीन जनजीवन के दृष्टिकोण से परिस्थितियों और सम्बन्धों के बदलाव को भी रेखांकित करते हैं। रेणु ने अपने 'मैला आँचल' में गाँवों के आर्थिक-सामाजिक विकास के अन्तर्सम्बन्धों को नयी परिस्थितियों में पहचानने का व्यापक एवं सूक्ष्म प्रयास किया है। 'मैला आँचल' के गाँव में भी किसान और मजदूरों का संघर्ष संगठित नहीं है, परन्तु इन्हें यह पता है कि मुक्ति के लिए संघर्ष की एकजुटता कितनी अपरिहार्य है। ग्रामीण जीवन में व्याप्त यह चेतना 'गोदान' में जन्म लेने के साथ ही मृतप्राय हो जाती है, परन्तु 'मैला आँचल' में यह चेतना जन्म लेकर आगे पलती-बढ़ती विकसित होती नजर आ रही है । वस्तुतः ''मैला आँचल'' की कथा, हिन्दी कथा-साहित्य में भविष्य के गाँवों के प्रादुर्भाव की कथा है । डॉ0 सुरेन्द्र चौधरी जैसे समालोचक इसे ही शहर-गाँवों के अंतर्लयन की एक नयी ऐतिहासिक संभावना के रूप में रेखांकित करते हैं।

रेणु के 'मैला आँचल' के जरिये जहाँ आजादी पूर्व के गाँव अपने तमाम संघर्षों और अन्तर्विरोधों के साथ जीवंत रूप में मिलेंगे, वहीं 'परती परिकथा' की पृष्ठभूमि आजादी के बाद का भारत है, जिसमें ग्रामांचल के परिवर्तनकारी दौर की कथा है । सामाजिक-आर्थिक परिर्वतनों के क्रम में गाँवों में भूमि-संघर्ष की जो समस्या ज्वलंत बनकर उभरी, उसके बहुकोणीय प्रभाव को 'परती परिकथा' में रेणु ने संपूर्णता में रखा ।

'मैला आँचल' का कथा-समय भारत के आजाद होने के पूर्व से लेकर आजादी मिल जाने के कुछ बाद तक का है । यह भारतीय राजनीति के संक्रमण का समय है । पर इस संक्रमण का प्रभाव गाँवों के सामाजिक जीवन पर बहुत अधिक नहीं पड़ा - यही दिखाना रेणु का मकसद है। 'मैला आँचल' में राजनीति के भी कई रूप प्रकट हुये हैं । पहले तो बालदेव, बावनदास आदि के द्वारा स्वाधीनता संग्राम की परम्परा संवहित होती है, परन्तु बाद में जब कालीचरन, वासुदेव आदि भी साथ हो जाते हैं और वे सभी 'सोसलिस्ट पार्टी' के संपर्क में आते हैं गाँव में नया नारा लगता है - 'कमाने वाला खायेगा। जोतने वाला काटेगा । काटनेवाला बाँटेगा । किसान राज कायम होगा।' स्वाधीनता संग्राम वाली राजनीति की समाप्ति के बाद सुराजी कार्यकर्त्ता बावनदास उदास रहा करता है । वह कहता है-'भारतमाता और भी जार बेजार हो रही हैं ।' समय की करवट और अंगड़ाई को पहचानने की दूरदृष्टि रेणु में अत्यंत प्रबल है । वे खूब समझते हैं कि गाँवों की मूल समस्या है - जमीन की समस्या । और इस जमीन पर प्रभुताशाली लोगों की नजर है । इस क्रम में रेणु की दृष्टि

संतालों पर जाती है, जिनकी जमीन हड़पी गयी है। 'मैला आँचल' में संतालों और गैर संतालों के संघर्ष का सजीव वर्णन है। संतालों का अगुआ चुनका माँझी डॉक्टर से मशविरा करने गया है। डॉक्टर कहता है – 'तुम लोग जमीन के असल मालिक हो। कानून है, जिसने तीन साल तक जमीन जोता- बोया है, जमीन उसी की होगी।' 'मैला आँचल' का मेरीगंज केवल पूर्णियाँ अंचल का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि वह समकालीन ग्रामीण यथार्थ का केन्द्र बनकर उभरा है।

डॉ० रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद की परम्परा में रेणु का मूल्यांकन करते हुए लिखा है– ''रेणु के मैला आँचल का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, -गाँवों की समस्या का निरूपण, जो उसे प्रेमचंद की परम्परा से जोड़ता है । बहुत कम उपन्यासों में पिछड़े हुए गाँवों के वर्ग-संघर्ष, वर्ग-शोषण और वर्ग-अत्याचारों के ऐसे जीते-जागते चित्रण मिलेंगे।'' प्रेमचंद का 'गोदान' जिसे 'भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य' कहा गया है, में अगर ग्रामीण जीवन में व्याप्त शोषण के विभिन्न रूपों का व्यापक विश्लेषण हुआ है, तो रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में भी तत्कालीन गाँवों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हलचलों और गतिविधियों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। गाँवों में अर्थतंत्र का असंतुलन, भूमि-समस्या की जटिलता और उसके अंतर्विरोध, वर्ग-संरचना में आजादी के बाद घटित परिवर्त्तनों के फलस्वरूप ग्रामीण परिदृश्य में भी आये बदलाव, किसानों और भू-स्वामियों के संघर्ष का एक नये चरण में प्रवेश, बटाईदारी की लड़ाई, निरक्षरता के प्रति ग्लानि का भाव, अंधविश्वासों से धीरे-धीरे उबरने की छटपटाहट, मुक्तिकामी राजनीतिक चेतना का विस्तार-ये तमाम चिंतन-विन्दु, प्रेमचंद और रेणु के उपन्यासों और कहानियों के बहुआयामी विवेचन-विश्लेषण से प्रकट होते हैं।

स्पष्ट है, प्रेमचंद और रेणु दोनों ग्रामीण जीवन के सफल चित्रकार हैं। प्रेमचंद की ग्रामीण दृष्टि में अगर व्यापकत्व है, तो रेणु में भी ग्रामीण जीवन के आत्मीयतापूर्ण अंकन का अद्‌भुत सामर्थ्य है। प्रसंगत: आचार्य नलिन विलोचन शर्मा को उदृत किया जा सकता है- ''रेणु ने अपने हृदय की सारी ममता और करूणा उड़ेल कर ही अपने गाँव और वहाँ रहने वालों को जाना होगा, जैसे प्रेमचंद ने जाना था।'' रेणु ने इस ग्रामीण जीवन के बारे में 'मैला आँचल' की भूमिका में पूर्णत: उचित ही लिखा है – ''इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी, गुलाल भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी – मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।'' सच पूछा जाय तो प्रेमचंद और रेणु के कथा-साहित्य में चित्रित ग्रामीण परिवेश की यही विसंगतिमूलक विशिष्टताएँ और वास्तविकताएँ उनके कथा-साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सशक्त उपलब्धियाँ रही हैं, जिनके जरिये भारतीय गाँवों के भविष्य की झलक निरखी-परखी जा सकती है।

डॉ॰ सुनील कुमार पाठक, आवास संख्या–जी॰–3, ऑफिसर्स फ्लैट, भारतीय स्टेट बैंक के समीप, न्यू पुनाईचक, पटना–800023, ई–मेल–skpathakpro@gmail.com, मो॰–9431283596

साहित्य साधक आचार्य श्रीरंजन सूरि देव

डॉ. ध्रुव कुमार

अपने मिलने-जुलने वालों को विदा करते वक्त यह अक्सर कहा करते हैं ''जाइयें, फिर आने के लिए''। हमेशा अध्ययनरत श्रीरंजन जी को अब भी शायद की किसी से मिलने जुलने में गुरे नहीं। 24 वें वर्ष के प्रवेश द्वार पर खड़े श्री रंजन जी 1940 के दशक में पटना आयें। उनके पूर्वज संयुक्त बिहार (अब झारखंड) के दुमका जिले के शुंभेश्वरनाथ धौनी (जात) के पंडे थे। यहीं उनका जन्म हुआ और प्रारंभिक शिक्ष-दीक्षा भी। उनके पिता बद्री नारायण पाठक इसी गांव की पाठशाला ''संस्कृत संजीवन अपर प्राइमरी बोर्ड स्कूल में शिक्षक थे।

हिन्दी के अलावा संस्कृत, पाली, प्राकृत, बंगला और मागधी सहित कई अन्य भारतीय भाषाओं के प्रकांड साधक श्री रंजन सूरि देव जी का मूल नाम राज कुमार पाठक है, यह मैंने तब जाना जब 1990 के दशक में जैनमूर्तियों पर शोध के सिलसिलें में उनसे घंटो मुलाकात होती उन दिनों भिखना पहाड़ी में उनका निवास हुआ करता था। महेन्द्रू स्थित मेरे घर से महज चार पांच मिनट की पैदल दूरी पर अवस्थित होने के कारण जब भी वक्त मिलता, मैं उनके पास ज्ञान लाभ के लिए पहुंच जाता। हमेशा वे अध्ययरत ही मिलते। जैन साहित्य में उनकी पैठ है, यह तो मैं जानता था लेकिन इतनी गहरी पैठ है, यह उनके साथ घंटों के ''सत्संग'' से धीरे-धीरे ज्ञात हुआ। किसी से वार्तालाप को वह ''संत्संग'' कहते। निश्चल, विनम्र और हमेशा दूसरों पर स्नेह की वर्षा करने वाले आचार्य श्रीरंजन सूरिदेव जी ने पी.एच.डी.की थिसीस लिखने की पेरी सारी परेशानी धीरे-धीरे दूर कर दी। जैन साहित्य से संबंधित उनके पास इतनी जानकारी थी कि उसे एक शोध निबंध के समेट पाना मुश्किल था। खैर सन् 2002 में मैंने अपना शोध निबंध पूरा कर लिया। डिग्री भी मिल गई। लेकिन उनके साथ घंटों सत्संग की आदत ऐसी लगी कि यह सिलसिला जारी रहा और कमोवेश आज भी जारी है। भिखना पहाड़ी से एस बी आई कालोनी, हनुमान नगर, फिर संदलपुर, महेन्द्रू में पहले किराये के मकान में ततपश्चात् अपने

वर्तमान आवास में यह ''रिश्ता'' बरकरार है। प्रत्येक मुलाकत में उनके पास मौजूद ज्ञान के अथाह भंडार से कुछ बहुमूल्य मोती लेकर ही लौटता हूँ। जैन धर्म और बिहार ''जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर'' ''जैन धर्म की कहानियां, बिहार झारखंड के जैनतीर्थ स्थल के बाद अब'' जैन शिक्षा आदि मेरी पुस्तकों में उनके मार्गदर्शन को मैं अपने उपर उनकी असीम कृपा और आर्शीवाद मानता हूँ। यह उनकी प्रेरणा ही थी कि यह पुस्तके मैं लिख पाया।

अपने मिलने-जुलने वालों को विदा करते वक्त यह अक्सर कहा करते हैं''जाइयें, फिर आने के लिए''। हमेशा अध्ययनरत श्रीरंजन जी को अब भी शायद की किसी से मिलने जुलने में गुरे नहीं। 24 वें वर्ष के प्रवेश द्वार पर खड़े श्री रंजन जी 1940 के दशक में पटना आयें। उनके पूर्वज संयुक्त बिहार (अब झारखंड) के दुमका जिले के शुंभेश्वरनाथ धौनी (जात) के पंडे थे। यहीं उनका जन्म हुआ और प्रार्भिक शिक्ष-दीक्षा भी। उनके पिता बद्री नारायण पाठक इसी गांव की पाठशाला ''संस्कृत संजीवन अपर प्राइमरी बोर्ड स्कूल में शिक्षक थे। पिता के मृत्यु के पश्चात् श्री रंजन जी का किशोरवय जीवन का अधिकतर अंश ननिहाल (भागलपुर में बीता। उनके पापा पं0 नरसिंह मोहन मिश्र कविताएं लिखते थे, 'सिंह' उपनाम थे। पं0 नरसिंह मोहन मिश्र जी के समधी पं0 चन्द्रशेखर मिश्र उन दिनों समस्तीपुर के रोसड़ा में ''उषा आयुर्वेद भवन'' का संचालन करते थे। वे भी साहित्यरसिक थे। उषा आयुर्वेद भवन में आर सी प्रसाद सिंह प्राय: आया करते थे। वे रोसड़ा के निकटवर्ती एरौत गांव के निवासी थे और खगड़िया महाविद्यालय में अध्यापन कार्य करते थे। आरसी प्रसाद सिंह जब भी ''उषा आयुर्वेद भवन'' आते पूरी साहित्य गोष्ठी ही जम जाती। आरसी बाबू श्रीरंजन जी के पापा नरसिंह मोहन मिश्र जी को अपनी रचनाएं भेंट करते। अपने पापा जी के माध्यम से श्रीरंजन जी को आरसी प्रसाद सिंह का कथासंग्रह ''एक प्यासी चाय'' हस्तगत हुई। वे इसे पढ़कर बहुत प्रभावित हुए और संभवत: लिखने का प्रेरित भी।

श्रीरंजन सूरिदेव जी के साहित्यिक जीवन की शुरूआत शिवपूजन सहाय द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिक ''बालक'' से हुई। इसी पत्रिका में उनकी पहली रचना ''मंदार पर्वत'' निबंध के रूप में प्रकाशित हुई। उच्च शिक्षा पहले देवघर और फिर मुजफ्फरपुर से हासिल करने के दौरान ही उन्हें 1949 ई0 में पटना जिले के पुनपुन स्थित वीर ओइयारा उच्च विद्यालय में प्रधान संस्कृत शिक्षक के पद पर कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। शुरूआती दिनों में ही आचार्य शिवपूजन सहाय ने श्रीरंजन सूरी देव की प्रतिमा का आकलन कर लिया था। यहीं कारण है कि तमाम ना-नुकूर के बाद भी शिवपूजन जी ने श्रीरंजन जी को एक सौ दस रूपये मासिक की शिक्षक की नौकरी छुड़वाकर 75 रूपये मासिक कर बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन में ले आए। बाद में शिवपूजन सहाय जी पहल पर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में अपना योगदान किया। बीच में कुछ दिनों के लिए वे वैशाली स्थित जैन एवं प्राकृत शोध संस्थान में व्याख्याता के रूप में भी नियुक्त हुए। सेवानिवृति उन्होंने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में उप निदेशक (शोध) के रूप में की।

गत वर्ष यानि 2017 मे 30 मई को राष्ट्रपति के कर कमलों से भारत विद्या इंडोलोजी के क्षेत्र में स्वामी विवेकानंद पुरस्कार से सम्मानित होने को वे अपनी साहित्य साधना की सफलता

मानते है। आज भी उस क्षण को अपनी सुखद स्मृतियों में संजोए वे कहते है:- 'मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए इससे बड़ी बात और क्या हो सकता है कि उनकी साधनाव तप का प्रतिफलन राष्ट्री स्तर पर एक विशिष्ट पहचान के रूप में हो''

अपनी जीवन यात्र से पूर्णत: संतुष्ट श्रीरंजन सूरिदेव ने अब तक पचास से अधिक पुस्तके व ग्रंथो की रचना की है। इनमें तो कुछ ऐसी हैं जो हिन्दी साहित्य की अनमोल धरोहर के रूप में चिन्हित हो चुकी है। ऐसी पुस्तकों में 'प्राकृत-संस्कृत का समानांतर अध्ययन'' ''सांस्कृतिक निबंध कोष'', ''साहित्य: संस्कृति: संस्मृति'', बिहार के स्त्री पुरूष, ''हिन्दी के विकास में पत्रकारिता की भूमिका'', जैन धर्म-दर्शन-आचार पर केन्द्रित ''अर्हन्तिकी'' तथा संस्कृत गद्य-पद्य संग्रह 'अक्षर-भारती' शामिल हैं। उनकी दूसरी कथा हिन्दी में अनुदित पुस्तकों में 'बसुदेव हिण्डी' (प्राकृत से हिन्दी), सिंहासन बत्तीसी (संस्कृत से हिन्दी), धूर्ताख्यान (प्राकृत से हिन्दी) बेतास पचीसी (संस्कृत से हिन्दी), अगडदतकहा (प्राकृत से हिन्दी), आचार्य जिनप्रभ सूरि रचित ''कल्प प्रदीप'' (प्राकृत संस्कृत से हिन्दी), ''उपासक दशासूत्र'' (प्राकृत से हिन्दी तथा संस्कृत अनुवर्तन), आचार्य प्रभाचन्द्र रचित प्रभावक चरित (संस्कृत से हिन्दी) प्रमुख है। इन दिनों श्रीरंजनसूरि जी ने पहले 18 वर्षो की अथक परिश्रम के पश्चात् एक हिन्दी विश्वकोष तैयार किया है जिसके प्रकाशन के लिए उन्हें किसी प्रकाशक की आवश्यकता है।

श्रीरंजन सूरिदेव आचार्य शिवपूजन सहाय और आचार्य नलिन विलोचन शर्मा जी के आलावा रामवृक्ष बनीपुरी जी को भी व्यक्तिगत सम्बोधन में ''बाबूजी'' कहा करते थे। 1948 ई0 में श्रीरंजन जी पहली बार पटना आये तो सबसे पहले उनका परिचय गंगाशरण सिंह जी से हुआ। गंगाबाबू उन दिनों कदमकुआं मुहल्ले के न्यू एरिया में लोकनायक जयप्रकाश नारायण पटना में रहते थे। वहीं गंगा बाबू के निवास पर उन्हें रामवृक्ष बेनीपुरी जी के प्रथम दर्शन हुए। मुलाकात में ही बेनीपुरी जी ने उन्हें ढेर सारा आ दे दिया उनकी उदारता और व्यक्तिव ही प्रभाव था कि श्रीरंजन जी बिहार हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध हुए।

आपके अंदर साहित्यिक रूझान कब और कैसे पैदा हुआ? इसके जवाब में वे अपने किशोर अवस्था को स्मरण करते हैं सन् 1942 के आंदोलन के आसपास की बात है। तब मैं अपने गांव (शुम्भेश्वरनाथ धौनी) में रहता था। उस समय मैं साहित्यिकों के संसार के इतना परिचित नहीं हुआ था। मेरे गांव की पाठशाला ''संस्कृत-संजीवन अपर प्राइमरी बोर्ड स्कूल में राज्य सरकार की ओर से जिला वोर्ड द्वारा प्राइमरी स्कूलों के लिए पत्र-पत्रिका की खरीद-योजना के अन्तर्गत प्रसिद्ध काव्य शास्त्र रामदहिन मिश्र के सम्पादकत्व में पटना से प्रकाशित मासिक पत्र ''किशोर'' प्रतिपास भाग था। उसी मासिक पत्र ने मेरे भीतर साहित्य की अभिरूची पैदा की। सन् 42 की फरवरी माह में ही आरसी प्रसाद सिंह जी का काव्य संग्रह ''आरसी'' प्रकाशित हुआ था। मेरे सगे चचरे अग्रज

पं0 कामेश्वर पाठक जी को कहीं से आरसी प्रसाद सिंह जी की 1938 में प्रकाशित प्रथम कालजयी काव्यकृति 'कलायी'' की प्रति उपलब्ध हो गई थी। वह उसमें संकलित कविताओं का सानुराग और सस्वर पाठ करते और मैं मुग्ध होकर सुनता।

श्रीरंजन सूरि देव के जीवन में पं0 मथुरा प्रसाद दीक्षित, आचार्य शिवपूजन सहाय और आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ब्रहमा, विष्णु और महेश की तरह थे। हालांकि इनमें सबसे ज्यादा वे आचार्य शिवपूजन सहाय के नजदीक रहे। शिवपूजन सहाय ही वह शख्स थे जिन्होंने श्रीरंजन जी को वीर ओइयारा हाई स्कूल से शिक्षक की नौकरी जुड़वा कर बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन ले गये। वे न चाहते हुए भी पटना आये। शिवपूजन जी ने उनकी लेखनी को संवारा उन्हें साहित्य साधना का पाठ पढ़ाया और सम्पादन व लेखन कला के संस्कार दिए। अपने साहित्यक गुरू आचार्य शिवपूजन सहाय और आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के बारे में श्रीरंजन जी अक्सर कहते है''सम्पादन और भाषा संशोधन के क्षेत्र में आचार्य शिवाजी और आचार्य नलिन जी की युगकल्पना ही द्वितीयता नहीं है''।

श्रीरंजन सूरिदेव आचार्य शिवपूजन सहाय और आचार्य नलिन विलोचन शर्मा जी के आलावा रामवृक्ष बनीपुरी जी को भी व्यक्तिगत सम्बोधन में ''बाबूजी'' कहा करते थे। 1948 ई0 में श्रीरंजन जी पहली बार पटना आये तो सबसे पहले उनका परिचय गंगाशरण सिंह जी से हुआ। गंगाबाबू उन दिनों कदमकुआं मुहल्ले के न्यू एरिया में लोकनायक जयप्रकाश नारायण पटना में रहते थे। वहीं गंगा बाबू के निवास पर उन्हें रामवृक्ष बेनीपुरी जी के प्रथम दर्शन हुए। मुलाकात में ही बेनीपुरी जी ने उन्हें ढेर सारा आ दे दिया उनकी उदारता और व्यक्तिव ही प्रभाव था कि श्रीरंजन जी बिहार हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध हुए। बेनीपुरी ने श्रीरंजन जी को बहुत ही आत्मीयत्वपूर्ण पत्र लिखा जिसमें उन्हें साहित्य सम्मेलन से जुड़ने का आग्रह था। श्रीरंजन सूरी देव जी मानते है कि इस प्रस्ताव ने उनके जीवन की धारा बदल दी और बेनीपुरी जी के सम्पर्क और सौजन्य से ही वे अपने को हिन्दी की से अपना सहयेाग अर्पित करने के लायक बनाया।

अपनी कर्मठता, लगन और ज्ञान के सबूते हिन्दी भाषा और साहित्य को प्रतिपदा दिखाने वाले श्रीरंजन सूरिदेव मानते है कि साहित्य की साधना से ही उन्हें वह सब कुछ हासिल हो सका जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। सभी दैनिक कृपा से ही यह संभव हुआ, वह मानते हैं। 93 वर्ष की अवस्था में भी हर वक्त सकारात्मक उर्जा से ओत प्रोत श्रीरंजन सूरिदेव अपने को ''साहित्य साधक'' के रूप में ही पहचाने को अपने जीवन की सफलता मानते हैं।

डा. ध्रुव कुमार, पत्रकार–लेखक, पी.डी.लेन, महेन्द्रु, पटना
मोबाईल नं0 : 9304455515, email id: dhrub20@gmail.com

✧ ✧ ✧

भारतेन्दु-पूर्व-युगीन खड़ीबोली

डॉ. जसपाली चौहान

'उर्दू'-फारसी के माध्यम से मुसलमान लेखकों द्वारा खड़ीबोली को जो साहित्यिक रूप बहुत पहले ही मिल गया था उसका विकास भी इसी युग में हुआ। अतः खड़ीबोली को व्यवहार में लाकर 'भाषा' का गौरव-पद प्रदान करने में मुसलमानों का हाथ प्रथम और मुख्य था। ''प्रारम्भ में उर्दू'' और 'खड़ीबोली' में कोई भेद विशेष नहीं था। खड़ीबोली का जा रूप आज मिलता है, वह फारसी शब्दावली से युक्त 'उर्दू' में दिखाई देता है 18वीं शताब्दी के पश्चात् 'उर्दू' की लिपि फारसी होने के कारण दोनों में भेद समझा जाने लगा।

खड़ीबोली से तात्पर्य उस शिष्ट साहित्यिक भाषा से है जो एक बड़े भू-भाग में जन-भाषा (बोली) के रूप में व्यवहृत होती है। खड़ी बोली किसी एक युग अथवा परिस्थिति की देन नहीं है। जनभाषा से उठकर साहित्यिक रूप ग्रहण करने में इस शताब्दियां लगी है। विद्वानों के अनुसार अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं के जन्म के साथ ही 'खड़ी बोली' का जन्म भी लगभग 100 ईस्वी के आस-पास हो गया था। जनभाषा होने के कारण यह 'सिद्धों' के चर्यापदों में व्यवहरत होने लगी थी। 'सधुक्कड़ी' भाषा के रूप में सिद्धों से आरम्भ हुई यह परम्परा 'नाथों' की 'बनियों' (11वीं से 14वीं शताब्दी तक) से होती हुई संत साहित्य (15वीं-16वीं शताब्दी) तक चली आई है। इधर फारसी मिश्रित खड़ीबोली का प्रयोग मुसलमान कवियों ने किया। इनमें अमीर खुसरों (1253-1325 ई.) की खड़ीबोली आधुनिक खड़ीबोली के बहुत निकट थी, भले ही उनकी परम्परा बहुत काल तक अगे नहीं बढ़ पाई। डॉ. बाहरी ने इस युग को हिन्दी बोलियों का 'अंकुर युग' कहा है। खुसरो के पश्चात् उनके अनुयायियों के अथाव में उनकी यह परम्परा आगे तो नहीं बढ़ पाई किंतु संतो के युग तक उनके 'दोहो' तथा 'सबदों' में 'सधुक्कड़ी' भाषा के रूप में इसका व्यवहार होता रहा। भक्तिकालीन अन्य कवियों के काव्य में खड़ीबोली का समावेश लोक-तत्व के रूप में कहीं-कहीं ही दिखाई देता है क्योंकि वे 'ब्रज' एवं 'अवधी' में रचनाएँ कर रहे थे। रीतिकाल में जो कवि अपनी रचनाओं को जनता के

निकट लाना चाहते थे, उन्हीं कवियों की भाषा में खड़ीबोली मिलती है। इस काल के उत्तर भारत के साथ दक्षिण में जो खड़ीबोली का विकास हुआ। वह एक महत्वपूर्ण बात है। आचार्य चतुरसे के शब्दों में''खड़ीबोली का आरम्भिक रूप हम सिद्धों और कुछ मरू भाषा के संसर्ग में देख आए हैं परन्तु इसके गद्य का पुष्ट रूप दक्षिण में पनपा।'' दक्षिण में पनपी यह खड़ीबोली हिन्दवी कहलाई आगे चलकर यह हमें दो रूपों में दिखाई देती है। (1) दक्षिणी हिन्दी और (2) उत्तरी हिन्दी। मुसलमानों की भाषा में अरबी-फारसी के शब्द तथा हिन्दुओं की भाषा में 'ब्रज' और 'देशीय' शब्दों के साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों का आना स्वाभाविक था। उत्तर-पश्चिम भारत में तो इसका व्यवहार होता ही था, दक्षिण के कवि 'बली साहब' के दिल्ली जाने पर और वहाँ राजभाषा के फारसी से प्रभावित होने के कारण उनके द्वारा खड़ीबोली का 'उर्दू' रूप में प्रचार हुआ परंतु दक्षिण के लेखकों और कवियों ने अपनी भाषा को 'दक्खिनी' या 'दक्खिनी हिन्दी' ही कहा है। इस प्रकार खड़ीबोली का प्रादुर्भाव सिद्धों के युग से हुआ परंतु 18 वीं शताब्दी तक उसका स्वतंत्र रूप से अनुष्ठान नहीं हो पाया था, यहाँ तक कि अभी इसका नामकरण भी नहीं हो पाया था। इस समय तक साहित्यक भाषा में खड़ीबोली का आगमन लोकतत्व-सूचक मात्र था।

खड़ीबोली का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास गद्य के माध्यम से, अंग्रेजी शासनकाल से मानना चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से इसे विभिन्न स्रोतों को बढ़ावा मिला। उक्त युग की खड़ीबोली को विकसीत करने वाले स्रोत इस प्रकार है:-

'उर्दू'- फारसी के माध्यम से मुसलमान लेखकों द्वारा खड़ीबोली को जो साहित्यिक रूप बहुत पहले ही मिल गया था उसका विकास भी इसी युग में हुआ। अत: खड़ीबोली को व्यवहार में लाकर 'भाषा' का गौरव-पद प्रदान करने में मुसलमानों का हाथ प्रथम और मुख्य था। ''प्रारम्भ में उर्दू'' और 'खड़ीबोली' में कोई भेद विशेष नहीं था। खड़ीबोली का जा रूप आज मिलता है, वह फारसी शब्दावली से युक्त 'उर्दू' में दिखाई देता है 18वीं शताब्दी के पश्चात् 'उर्दू' की लिपि फारसी होने के कारण दोनों में भेद समझा जाने लगा। आगे चलकर खड़ीबोली में संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य होने लगा और 'उर्दू' में फारसी शब्दों का, परंतु 'उर्दू' खड़बोली की शैली के रूप में हिन्दी गद्य को विकसित करती रही। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द (19वीं शताब्दी) की खड़ीबोली बहुत कुछ 'उर्दू' पर आधारित थी। भारतेन्दु युग के अन्य लेखकों को भी आरम्भिक भाषा 'उर्दू' ही थी।

ईसाई मिशनरी- ईसाई धर्म प्रचारक लगभग सन् 1803 से अपने धर्म के प्रचार के लिए 'जन-भाषा' का उपायेाग करने लगे। इन लेखकों ने सरल भाषा में पुस्तकें छपवाकर जनता में बांटी। ईसाई धर्म-ग्रंथो को देशी भाषा में अनुवाद कराकर वितरण किया गया। धर्म-प्रचार हेतु लिखी गई मौलिक अथवा अनूदित रचनाओं की भाषा ठेठ हिन्दी थी। कुछ अंश इस प्रकार है:-

''दकारों की तरफ से मत कुढ़वा अधर्मियों को देख के मत जल क्योंकि वे घास के जैसे जल्दी काटे जांगे वा हरी घास के ऐसे मुर्झाय जांगे। चिहुह में भरोसा रख वा भला काम कर देश में रह बा सत्य को मांगा कर''। (दाउद के गीते)

''ईश्वर ने प्रथम आकाश और पृथ्वी को बनाया, तिस पीछे मनुष्य को पृथ्वी की धूल से बनाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की, अर्थात् उसे ज्ञान आत्मा दी, इसलिये कि वह आत्म संबंधी भोग करे और अपने कर्ता की सेवा में रहे। ईश्वर ने पहले मनुष्य आदम से पहली स्त्री 'ईव' को उत्पन्न करा, ये प्रसन्न और वे अपनी संतान सहित उस समय से दु:खी और दरिद्री हुए ऐसे पाप संसार में आया और धर्म उठ गया''। इन उदाहरणों में संस्कृत तथा ठेठ हिन्दी के शब्दों का प्रयोग हुआ है, इन अंशों की खड़ीबोली आधुनिक खड़ीबोली के निकट है। अत: ईसाई मिशनरियों द्वारा सरल हिंदी में अपने धर्म प्रचार का कार्य भारतेन्दु युग तक चलता रहा।

फोर्ट विलियम कॉलेज - अंग्रेजी शासनकाल में भारतीय एवं अंग्रेजों को एक-दूसरे की भाषा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो गया था। ''आरंभ में अंग्रेजो ने देश की प्रचलित भाषाओं की ओर अधिक ध्यान न दिया परंतु बंगाल में अंग्रेजी राज्य का सूत्रपात हो जाने से उन्हें विजितों की भाषा का ज्ञान न होने के कारण माल व फौजी विभागों में अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ा अत: प्रचलित भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो गया''। अंग्रेजों के लिए भारतीय भाषाओं की शिक्षा तथा भारतीयों के लिए अंगेजी शिक्षा अनिवार्य हो गई। फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व ही मुंशी सदासुखलाल तथा इंशा अल्ला खाँ खड़ीबोली में रचनाएँ कर चुके थे लल्लूराम तथा सदल मिश्र ने (दोनों फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक थे) कॉलेज की आज्ञा से कुछ रचनाएँ खड़ीबोली में की। फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यक्ष 'जॉन गिलक्राइस्ट ने कंपनी के कर्मचारियों'' के बीच हिन्दुस्तानी भाषा को फैलाया जिसके फलस्वरूप 'इंगलिश हिन्दुस्तानी डिक्शनरी', 'हिन्दुस्तानी ग्रामर', 'दि ओरिएण्टल लिंग्विस्ट', का प्रणयन हुआ। अंतिम दो रचनाओं पर सरकार को खूब खर्च किया।'' राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने भी कॉलेज के लिए 'हिन्दी व्याकरण'' आख्यायिकाएँ तथा इतिहास आदि की रचना करके हिन्दी प्रचार में अपना योगदान दिया। अत: फोर्ट विलियम कॉलेज ने खड़ीबोली का खूब प्रचार-प्रसार किया।

मुद्रण-यंत्र तथा समाचार पत्र - भारतेन्दु-पूर्व-युग में खड़ीबोली के प्रचार-प्रसार एवं विकास में छापेखनों तथा पत्र-पत्रिकाओं का भी योगदान रहा। सन् 1837 में दिल्ली में सबसे बड़ा लीथो प्रेस खुला और उसके बाद बनारस कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में भी मुद्रणालय खुले लोगों ने 'खड़ी' को मुद्रित रूप में देखकर, स्थायी समझा और साहित्यिक कृतियों के लिए ग्राह्य समझ लिया। इस समय अनेक पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही थीं जिसमें खड़ीबोली विकसित होती चलती जा रही थी। 'उदन्तमार्तण्ड, बंगदूत, सुधाकर बुद्धिप्रकाश तथा लोकमित्र आदि में खड़ीबोली हिन्दी की रचनाएँ लगातार प्रकाशित होती रहती थीं परंतु राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के 'बनारस-अखबार' की भाषा में उर्दूपन अधिक था।

समसामयिक हिन्दी लेखक-गण - भारतेन्दु-पूर्व-युग में खड़बोली की भूमि निर्मित करने वाले लेखकों में मुशी सदासुखलाल (सन् 1746-1824) ने प्रारम्भ में उर्दू-फारसी में रचनाएँ

की इसके बाद भागवत् का अनुवाद हिन्दी में 'सुखसागर' नाम से किया, जिसकी हिन्दी (खड़ीबोली) अरबी-फारसी शब्दों से रहित होने कारण 'शुद्ध हिन्दी' कही गई, यथा-

'धन्य कहिए राजा दधीचि को कि नारायण की आज्ञा अपने सीस पर चढ़ाई। जो महाराज की आज्ञा और दधीच के हाड़ का ब्रज न होता तो ग्यारह जन्म ताई वृत्रासुर से युद्ध में सरबर और प्रबल न होता और न जय पावता'।

मुंशी की भाषा संस्कृत गर्भित है, शैली में पंडिताऊपन है।

इंशा अल्ला खां-(1764-1817) शुद्ध हिन्दी के प्रेमी थे। रानी केतकी की कहानी के आरम्भ में वे लिखते हैं- 'एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी धुर और किसी बोली का पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गंवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े-लिखे पुराने-पुराने डांग बूढ़े घाघ यह खटराग लाए। सिर हिलाकर मुँह, छुपाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आँखें फिराकर लगे कहने यह बात होती दिखाई नहीं देती। हिन्दीपन भी न निकलें और भाषापन भी न हो। खां साहब के उक्त विचार से यह स्पष्ट है कि वे अपनी रचनाओं को बाहर की बोली 'गंवारी' तथा भाखापन'' से मुक्त रखना चाहते थे और उन्होने ऐसा की किया। 'रानी केतकी की भाषा' ठेठ हिन्दी शब्दों के प्रयोग से भरी हुई है। इनकी रचनाओं में शब्द ठेठ हिन्दी के हैं परंत शैली 'उर्दू' है। 'रानी केतकी की भाषा' ठेठ हिन्दी' शब्दों के प्रयोग से भरी हुई है। इनकी रचनाओं में शब्द ठेठ हिन्दी के है परंतु शैली 'उर्दू' हैं रानी केतकी की कहानी की भूमिका में डॉ. श्यामसुन्दर दास लिखते है-''सारांश यह है कि इंशा अल्ला खां की कृति हिन्दी और 'उर्दू' दोनों भाषाओं के पृष्टपोषकों के लिए समान आदर की वस्तु और हिन्दी-गद्य की विकास-कड़ी की एक सुंदर और चमकती हुई कड़ी है। लल्लूराम (सन् 1764-1826) - खड़ीबोली के विकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ विद्वान 'खड़ीबोली' का स्वतंत्र नामकरण करने वाला इन्हीं को मानते है, उन्होंने अरबी-फारसी शब्दवली से मुक्त तथा तत्सम शब्दों से युक्त 'प्रेमसागर की रचना की जिसमें 'ब्रज' का पुट भी खूब है (क्योंकि वे स्वयं ब्रजभाषा के कवि थे) इन्होंने 'उर्दू' शैली को न अपनाकर तत्कालीन हिन्दी में प्रचलित विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दावली का भी प्राय: बहिष्कार किया है, ऐसे में ब्रजभाषा का अधिक प्रयोग होना ही था। वस्तुत: इनके सामन भाषा का कोई सर्वमान्य आदर्श तो था नहीं। सदासुखलाल तथा इंशा अल्ला खाँ की भाँति इन्होंने भी अपने विचार से भाषा का प्रयोग किया। प्रथम दोंनों लेखको ने बहुत अंश तक 'उर्दू' के आदर्श को अपनाया परंतु लल्लूलाल को 'उर्दू' की शैली तथा शब्दावली का प्रयोग मान्य नहीं था अत: उन्होंने स्वतंत्र रूप से हिंदी के ढाँचे के ढली शैली का अनुगमन किया। उपाध्याय जी के अनुसार ''सदासुखलाल की भाषा कुछ पंडिताऊ है और कुछ अस्त-व्यस्त इंशा अल्ला खाँ की भाषा का ढाँचा 'उर्दू' है। लल्लूलाल का ढंग इन दोंनो से भिन्न है उनकी भाषा चलती और हिंदी के ढंग में ढली हुई है, और यही उनकी प्रणाली की विशेषताएँ है''। इस कारण कुछ लेखक लल्लूलाल को वर्तमान हिंदी का जन्मदाता मानते है''-लल्लूलाल ने वर्तमान हिंदी की नींव डाली और उसमें उन्हें

कामयाबी भी हई। वस्तुत: इनकी भाषा विदेशी शब्दों से मुक्त होकर प्रवाहपूर्ण बनी इसलिए हिन्दी प्रेमियों ने उसे स्वीकार किया परंतु उनके ब्रजभाषापन को आगे स्थान नहीं मिला।

सदल मिश्र - (सन् 1774-1849) ने नासिकेतोपाख्यान' तथा अध्यात्म रामायण' की रचना हिन्दी (खड़ीबोली) में की। इनकी भाषा में 'ब्रज' का अभाव होने के कारण वह परिमार्जित कहलाई परंतु इनकी वाक्य रचना अनावश्यक रूप से विस्तृत होने के कारण भाषा में पंडिताऊपन का आभास मिलता है, पूर्वी बोलियों के शब्द भी पर्याप्त रूप में मिलते है। भारतेन्दु-पूर्व के उपरोक्त चारों लेखकों के युग को अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भाषा एवं साहित्य का ''विस्तार-काल'' माना है- 'विस्तारकाल के लेखक ने हिन्दी-गद्य का क्षेत्र विस्तृत तो किया किन्तु भाषा के संबंध में वे कोई निश्चित आदर्श उपस्थित न कर सके।' कथित चारों लेखकों में हिन्दी खड़ीबोली की रचनाएँ अवश्य की पर फिर भी इनके द्वारा भाषा के व्यावहारिक रूप का निर्माण न हो सका।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द (सन् 1823-1895)- इन्होंने फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्ययन-अध्यापन काल में विविध विषयों-भाषा, व्याकरण, आख्यानक, इतिहास, भूगोल आदि की रचना हिन्दी (खड़ीबोली) में की और मुसलमानों की ओर से घोर विरोध होने पर भी हिन्दी को स्कूलों में स्थान दिलाया। इनके पूर्व के लेखकों ने हिंदी के विकास में जो कुछ योगदान दिया, अदालती भाषा उर्दू होने के कारण उसकी गति रूक सी गई थी। सितारे हिन्द ने फिर से उसमें जान डाल दी। हिन्दी भाषा की विरोधी शक्तियों से रक्षा हेतु इन्होंने आरम्भ में सरल हिन्दी में रचनाएँ की, परंतु बाद में उसमें उर्दू का मिश्रण करने लगे। परिस्थिति-वश इन्होंने हिन्दी में उर्दू का मिश्रण आवश्यक समझ 'उर्दू-हिन्दी' मिश्रित भाषा का ही प्रचार किया। भाषा के संबंध में इन्होंने अपनी नीति स्वयं ही व्यक्त की है- 'हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेनी चाहिए जो आम-फहम व खास-पसन्द अर्थात् जिनको जियाहा आदमी समझ सकते है और जो यहाँ के पढ़े-लिखे आलिम फाजिल पण्डित विद्वान की बोलचाल में छोड़े नहीं गए हैं और जहाँ तक बन पड़े हम लोगों की हर्गिज गैर गुल्क के शब्द काम में न लाने चाहिए और न संस्कृत की टकसाल कायम करके नये-नये ऊपरी शब्दों के सिक्के जारी करने चाहिए। उन्होंने अधिक प्रचलित होने के कारण अरबी-फारसी शब्दों की विदेशी के अन्तर्गत नहीं लिया है। धीरे-धीरे राजा-साहब की भाषा नीति अरबी-फारसी की ओर झुक गई। उनका कथन है-शुद्ध हिन्दी चाहने वालों को हम यह यकीन दिला सकते है कि जब तक कचहरी में फारसी हरफ जारी हैं इस देश में संस्कृत शब्दों को जारी करने की कोशिश बफायही होगी। अत: राजा साहब की भाषा द्विधता भरी रही। उपाध्याय जी ने भी कहा है- ''हिन्दी की भाषा के विषय में उनका कोई निश्चित सिद्धांत नहीं था कभी वे उसे फारसी शब्दों मे मिश्रित लिखते थे कभी संस्कृत शब्दों में गर्भित कभी-कभी उन्होंने बड़ी सरल हिंदी लिखी है परंतु बोलचाल पर दृष्टि रखकर उसमें फारसी और अरबी के ऐसे शब्दों का त्याग नहीं किया जिनको सर्वसाधरण बोलते और समझ लेते हैं।'' इस प्रकार सितारेहिन्द की भाषा में द्विरूपता के दर्शन होते है कहीं भाषा संस्कृत गर्भित है कही जनसाधारण के निकट तो कहीं फारसी शब्दावली से बोझिल।'

राजा लक्ष्मण सिंह - (सन् 1826-1896)- इनको राजा-साहब की भाषा नीति मान्य नहीं थी। ये हिन्दी-संस्कृत शब्दावली को अपनाने के पक्ष में थे इन्हें हिन्दी में विदेशी शब्दों का मिश्रण स्वीकार नहीं था हिन्दी भाषा के संबंध में इनकी नीति थी-हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी है हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते है औद उर्दू यहाँ के मुसलमान और फारसी पढ़े हुए, हिन्दुओं की बोलचाल की भाषा है हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते है, उर्दू में अरबी के और फारसी के किंतु कुछ आवश्यक नहीं कि अरबी-फारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते है जिसमें अरबी-फारसी के शब्द भरें है''। इनकी भाषा नीति के दर्शन इनके द्वारा अनूदित 'शकुन्तला' नाटक के निम्न अंश में देखिए-

''दुष्यन्त! वृक्ष सींचने का घड़ा उठाते-उठाते तुम्हारी सखी थक गई है। देखों इसकी बाहें शिथिल हो गई है, लाल हथेली अधिक लाल पड़ गई है, छाती धुकधुकाती है, मुख पर पसीने के बिन्दु मोती से ढरक रहे है''।

अत: लक्षण सिंह ने भाषा को फारसी शब्दावली से विमुख रखकर हिन्दी की प्राचीन परम्परा की रक्षा की। सितारेहिन्द जिन संस्कृत शब्दों के प्रयोग से बचते थे, उन्हें लक्ष्मणसिंह ने नि: संकोच अपनी भाषा में प्रयुक्त किया है। इतना ही नहीं तत्सम के साथ-साथ तद्भव शब्द रूपों का व्यवहार भी इनकी भाषा में पर्याप्त है। अन्नत: कहा जा सकता है कि राज लक्ष्मण सिंह का खड़ीबोली में प्रयोग करने में विशेष योगदान है।

संदर्भ

1. डॉ. हरदेव बाहरी-हिन्दी का उद्भव, विकास और रूप, पृ. 238, 2. आचार्य चतुरसेन-हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ. 357, 3. डॉ. शितिकंठ मिश्र-खड़ीबोली का आन्दोलन, पृ. 62, 4. ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली-ऐतिहासिक पृष्ठीभूमि पृ. 24, 5. तत्कालीन 'उर्दू' रचना 'बागोबहार' को हिन्दी गद्य का प्रेरणा स्रोत बताते हुए बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी कृति 'हिन्दी भाषा' की भूमिका में लिखा है-'गद्य' बागोबहार' नाम की पोथी तैयार हुई तो गद्य की चर्चा कुछ बढ़ी यहाँ तक कि हिन्दुओं का भी इधर ध्यान हुआ। कविवर लल्लूलाल जी आगरा निवासी ने अगले ही वर्ष सन् 1803 में प्रेमसागर लिखा। मुसलमान लोग अपनी पोथियाँ फारसी अक्षरों में लिखते थे लल्लूलाल जी ने देवनगरी अक्षरों में अपनी पोथी लिखी।, 6. कथासार-Marshman's Brief Survey of Ancient History Translated into Hindi for the ayra School Book Society by Pandit Ruttun Lal Dec. 1839, 7. डॉ. लक्ष्मीसागर, वार्ष्णेय-फोट विलियम कॉलेज, 8. वही।, 9. इंशा अल्ला खाँ-नानी केतकी की कहानी, पृ. 2, उद्धत-''भारतेन्दु की खड़ीबोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन (डॉ. श्यामकुमारी श्रीवास्तव) पृ. 9, 10. 'बाहर की बोली' से तात्पर्य विदेशी शब्दों-अरबी-फारसी से है, 11. 'गंवारी' का अर्थ ब्रज, 'अवधी' बोलियों से है।, 12. 'भाखापन' का अर्थ संस्कृत मिश्रित भाषा से है।, 13. अयोध्या सिंह उपाध्याय-हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास पृ. 646, 14. महावीर प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी भाषा की उत्पति, पृ. 67, 15. अयोध्या सिंह उपाध्याय- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास पृ. 649, 16. सितारे हिन्द-भाषा का इतिहास, 17. अयोध्या सिंह उपाध्याय (लेखक)- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास से उद्धृत (स्वयं सितारेहिन्द का कथन), 18. वही-हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास पृ. 650, 19. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 444 से उद्धृत (स्वयं राजा लक्ष्मण सिंह का कथन), 20. राजा लक्ष्मण सिंह-शकुन्तला (नाटक), अनूदित (हिन्दी), अनुवादक स्वयं।

डॉ. जसपाली चौहान, दिल्ली विश्वविद्यालय

स्टेण्ट

अरूण अर्णव खरे

दो सप्ताह के विश्राम के बाद बृजभूषण ने ऑफिस जाना भी शुरू कर दिया। उनकी दिनचर्या भी थोड़े बदलाव के साथ पूर्ववत हो चली। डॉक्टर की सलाह अनुसार वह नियमित रूप से घूमने जाते, व्यायाम करते और समय पर दवाएँ लेते। शशिबाला के चेहरे पर भी रंगत लौट आई थी और सुगंध भी बड़ी खुश थी। पर सुयश ना जाने क्यूँ खुद को संयत नहीं कर पाया था- बार-बार उसे वीडियो में बताई गई बातें कचोटती रहती थी कि किस तरह अनेक डॉक्टर आवश्यक ना होने के बावजूद कमीशन के लिए कई-कई टेस्ट करा डालते हैं और मोटी फीस के लिए ऑपरेशन करने से नहीं झिझकते।

बृजभूषण का पूरा परिवार चिन्तानिमग्न था – कारण डॉक्टर ने तत्काल एंज्योप्लास्टी कराने की सलाह दी थी। डॉक्टर सुधाकर पंचोली के शब्द शशिबाला के कानों में बज रहे थे-''पेशेण्ट की एक आर्टिरी में नब्बे परसेण्ट ब्लॉकेज है और दूसरी में पेंसठ परसेण्ट-तत्काल एंज्योप्लास्टी करना जरूरी है –आप शीघ्र ही दो लाख रुपए जमा करा दें-''

नब्बे परसेण्ट ब्लॉकेज की बात सुनकर पूरा परिवार सन्न रह गया था। पत्नि शशिबाला तो जैसे अपनी सुध-बुध ही खो बैठी थीं। बेटी सुगंध डाक्टर की सलाह के अनुसार तुरन्त एंज्योप्लास्टी कराने की पक्ष में थी जबकि बेटा सुयश एंज्योप्लास्टी कराने से पहले किसी दूसरे विशेषज्ञ डाक्टर की सलाह लेना चाहता था। वह सुगंध को समझाने की कौशिश कर रहा था – ''पापा की स्थिति स्थिर है अब और वह सबसे बात भी कर रहे हैं – दर्द भी बिल्कुल नहीं है – मैने अपने एक दोस्त को बुलाया है उसके चाचा कस्तूरबा में डॉक्टर हैं-उसके साथ जाकर मैं उनसे मिलकर आता हूँ-पैसे भी निकालने हैं-इसके बाद क्या करना है निर्णय करेंगे।

सुगंध भाई से सहमत नहीं हो रही थी – बार बार वह यही दोहरा रही थी – ''भैया हार्ट का मामला है – याद करो डॉक्टर ने क्या कहा था – जितनी जल्दी हो सके एंज्योप्लास्टी करना जरूरी है -- यदि पापा को कुछ हो गया तो -- नहीं -- नहीं हम रिस्क नहीं ले सकते -- मेरी सहेली नैना के पापा को तो जरा सा दर्द हुआ था और वह अस्पताल तक भी नहीं

पहुँच सके थे -- रास्ते में ही उनकी मृत्यु हो गई थी -- भाई आप क्यूँ टाइम खराब कर रहे हैं-- माँ को देखो कैसी विक्षुब्ध सी बैठी हैं -- कुछ बोल ही नहीं रहीं हैं''

इस बीच दो घंटे में नर्स तीन बार आकर पूँछ चुकी थी - क्या निर्णय किया - पैसे जल्दी जमा करा दीजिए। डॉक्टर ने भी केथेटर अभी निकाला नहीं था - हाथ में टेपिंग करके उसे बाँध दिया था। उनका कहना था कि एक बार केथेटर निकाल दिया तो फिर पैर की धमनी से दोबारा केथेटर डालकर एंज्योप्लास्टी करनी होगी।

सुयश ने कुछ दिनों पूर्व ही व्हाट्सएप पर वायरल हुए हार्ट-सर्जरी से सम्बन्धित एक वीडियो देखा था - जिसे देख कर वह आश्वस्त था कि पापा को कुछ नहीं होगा पर वह बहिन को नहीं समझा पा रहा था -- बहिन ने भी वह वीडियो देखा था परन्तु वह भावनात्मक आवेग में कुछ सुनने को तैयार नहीं थी। उसके लिए यह निश्चित करना मुश्किल हो रहा था कि वह किस डॉक्टर पर विश्वास करे - - वीडियो वाले या पापा का इलाज करने वाले। डॉक्टर तो ईश्वर का प्रतिरूप होता है - डॉक्टर पंचोली ने तो पापा के सभी टेस्ट कर एंज्योप्लास्टी की सलाह दी है -- उन पर वह कैसे अविश्वास कर सकती है। उसने निश्चित कर लिया - डॉक्टर पंचोली का कहा ब्रह्म वाक्य के समान है -- उनकी सलाह पर सेकेण्ड थॉट की कोई गुंजाइश नहीं है। हार कर सुयश ने दो लाख का चेक और अनुमति पत्र काउण्टर पर जमा करा दिए। उसी दिन शाम को डॉक्टर ने बृजभूषण की एंज्योप्लास्टी कर दी। सुयश को बाद में डॉक्टर ने बताया कि विलम्ब हो जाने से दूसरी आर्टिरी में ब्लॉकेज पचहत्तर प्रतिशत हो गया था इसलिए दो स्टेण्ट लगाने पड़े थे। एक लाख रुपए सुयश को और भरने पड़े। एक सप्ताह अस्पताल में रखने के बाद नियमित चेक-अप कराने की सलाह के साथ बृजभूषण को छुट्टी दे दी गई।

दो सप्ताह के विश्राम के बाद बृजभूषण ने ऑफिस जाना भी शुरू कर दिया। उनकी दिनचर्या भी थोड़े बदलाव के साथ पूर्ववत हो चली। डॉक्टर की सलाह अनुसार वह नियमित रूप से घूमने जाते, व्यायाम करते और समय पर दवाएँ लेते। शशिबाला के चेहरे पर भी रंगत लौट आई थी और सुगंध भी बड़ी खुश थी। पर सुयश ना जाने क्यूँ खुद को संयत नहीं कर पाया था -- बार-बार उसे वीडियो में बताई गई बातें कचोटती रहती थी कि किस तरह अनेक डॉक्टर आवश्यक ना होने के बावजूद कमीशन के लिए कई-कई टेस्ट करा डालते हैं और मोटी फीस के लिए आपरेशन करने से नहीं झिझकते। जरूरी दवाइयों के साथ कुछ गैर जरूरी दवाईयां लिखना तो बहुत कॉमन सा है। पर जो हुआ सो हुआ-अब पापा स्वस्थ हैं -- खुश हैं तो ज्यादा सोच-विचार क्या करना। जब उसने सुगंधा के मुँह से यह सुना कि उसने आज पापा को गुनगुनाते देखा है तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। ऑपरेशन के बाद धीर- गम्भीर हो चुके पापा फिर से अपने पुराने ह्युमरस मूड में इतनी जल्दी आ जाएँगे -- यह उसने सोचा भी नहीं था।

तीन माह के अन्दर ही सब कुछ सामान्य हो चला था। बृजभूषण दो-एक बार गोष्ठियों में भी भाग ले आए थे। एक बार सपरिवार सिने पेलेस में बाजीराव मस्तानी भी देख आए थे। सुगंध को एम.बी.ए. के तीन हफ्ते के स्टडी टूर पर हैदराबाद जाना था पर वह उन्हें छोड़ कर जाने को बिल्कुल भी इच्छुक नहीं थी। उन्होंने ही उसे मनाया। सुयश भी अपनी एम.टेक. की पढ़ाई में पूरा ध्यान लगाने लगा था। शशिबाला भी कॉलोनी की किटी पार्टियों में सक्रिय हो गई थी। यानी कि जिन्दगी

पहले की तरह पटरियों पर लौट आई थी अपनी पूरी ठसक के साथ।

बृजभूषण घूमने के बहुत शौकीन थे। हर साल पूरा परिवार गर्मियों अथवा सर्दियों की छुट्टियों में किसी न किसी हिल-स्टेशन या फिर किसी दर्शनीय स्थल पर घूमने अवश्य जाता था। बच्चों ने बीमारी में जिस तरह उनका ख्याल रखा था वह उन्हें अक्सर याद आता। वह चाहते थे कि इस बार भी कहीं बाहर जाकर कुछ समय बच्चों के साथ बिताया जाए। सुगंध के एग्जाम के बाद उन्होंने एक सप्ताह के लिए ऊंटी जाने का कार्यक्रम बना लिया। सुयश के प्रोजेक्ट का काम चल रहा था लेकिन वह भी इस अवसर को मिस करने के मूड में नहीं था। एक सप्ताह तक उसने दिन-रात एक कर अपने हिस्से का काम निपटाया।

छुट्टियों को सबने खूब एन्जॉय किया। पायकारा लेक पर बच्चों की फरमाइस पर बृजभूषण ने अपना पसन्दीदा मस्ती वाला गाना भी गाया - ''समन्दर में नहा कर और भी नमकीन हो गई हो -- अभी आया है प्यार का मौसम और रंगीन हो गई हो'' -- बेचारी शशिबाला - ''अरे ये कौन सा गाना लेकर बैठ गए'' - कहते हुए शर्म से लजाती रही। बच्चों ने इन अनूठे पलों का वीडियो भी शूट किया। बोटैनिकल गॉर्डन, मुदुमलाई वाइल्ड-लाइफ सेंक्चुरी, कुन्नूर सभी स्थानों पर सबने खूब मस्ती की। बच्चे पापा को पुरानी रंगत में देखकर बहुत खुश थे। इस खुशगवार टूर से लौटते हुए सब तरोताजा थे और असीम ऊर्जा से भरे हुए थे।

दस दिन बाद ही परिवार को एक और शुभ सूचना मिली। बृजभूषण का प्रमोशन हो गया और उनको वहीं हेड ऑफिस में ही पदस्थ कर दिया गया। इस खुशी में उन्होंने एक छोटी सी पार्टी दी -- सुयश और सुगंध के कुछ दोस्त भी पार्टी में शामिल हुए -- डॉक्टर पंचोली को भी बुलाया था पर वो नहीं आए -- पर सुयश के दोस्त राघव के साथ उसके अंकल डॉक्टर नीरज अवस्थी अप्रत्याशित रूप से पार्टी में आए। पार्टी से जाते समय उन्होंने सुयश को बुलाकर कहा - ''योर पापा इज रियल जीनियस एण्ड फुल ऑफ इनर्जी -- ऐसे जिन्दादिल इंसान को दिल की बीमारी कैसे हुई -- आश्चर्य होता है -- तुम अगले हफ्ते गुरुवार को उनकी रिपोर्ट लेकर हमारे क्लीनिक पर आ जाओ -- मैं भी उनकी सारी रिपोर्ट देखना चाहता हूँ''

सुयश नहीं चाहता था कि पापा या सुगंध को इस बारे में कुछ पता चले -- पापा अपनी सामान्य जिन्दगी जीने लगे हैं उन्हें वह फिर से किसी तरह के तनाव में डालना नहीं चाहता था -- और सुगंध पता नहीं क्या-क्या सोचने लग जाएगी। उसने चुपचाप बृजभूषण की सभी रिपोर्ट्स निकाल कर अपने पास रख लीं।

एक हफ्ता यूँ ही गुजर गया। शाम को सुयश रिपोर्ट दिखाने डॉक्टर नीरज अवस्थी के पास गया। बृजभूषण घर पर लौटे तो कोई नहीं था -- सुगंध कोचिंग से नहीं आई थी और सूर्यबाला अपनी मासिक किटी पार्टी में गईं हुई थी। उन्होंने कपड़े बदले और सान्ध्यकालीन अखबार जो वह प्रतिदिन ऑफिस से लौटते हुए खरीद लेते थे, लेकर अपने कमरे में आ गए।

सुयश लौटा तो विचलित था और गुस्से से भरा हुआ भी। सुगंध उसे बाहर ही मिल गई। भाई को परेशान सा देखा तो बोली - ''क्या हुआ -- भैया, प्रोजेक्ट में कोई समस्या है क्या''

''नहीं -- डॉक्टर नीरज अवस्थी से मिलकर आ रहा हूँ -- पापा की रिपोर्ट देखकर पता है उन्होंने क्या कहा''

''क्या कहा'' - सुगंध किसी आशंका से सुयश का मुँह ताकने लगी।

''उन्होंने कहा - पापा को कोई बड़ी समस्या ही नहीं थी - सब कुछ सामान्य था -- नब्बे परसेण्ट ब्लॉकेज की बात झूठी थी -- एक माह की दवा से सब ठीक हो जाता -- एंज्योप्लास्टी की आवश्यकता ही नहीं थी''

सुयश की बातें सुनकर सुगंध को साँप सूँघ गया। उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा था क्या बोले। वह हतप्रभ सी भाई को निहारे जा रही थी। तभी शशिबाला भी आ गईं। दोनो को वहाँ देखा तो पूँछा -- ''तुम लोग बाहर क्यूँ खड़े हो -- पापा नहीं आए क्या अब तक''

''पापा तो बहुत पहले ही आ गए थे -- घर पर कोई नहीं था तो नींद लग गई है उन्हें- मैं अभी उनको चादर उड़ा कर आई हूँ'' - सुगंध ने कहा।

''आज बहुत देर हो गई -- सात बज गये -- किटी पार्टी के बाद सविता के घर जाना पड़ा -- अगले माह उनकी बेटी की शादी है -- गहने और कपड़े खरीद कर लाई हैं तो वही दिखाने ले गईं - देखो पापा जाग रहे हों तो उनके लिए चाय बना दें'' - शशिबाला ने कहा।

सुगंध बृजभूषण के कमरे में देखने गई -- वहाँ से उसकी चीख सुनाई दी - ''भैया देखो -पापा को क्या हो गया है''

सब बदहवास से उनके कमरे में पहुँचे - देखा बृजभूषण पलंग पर निष्तेज से लेटे हुए हैं, सिर तकिए से नीचे की ओर ढुलका हुआ है -- सीने पर सान्ध्य कालीन पेपर रखा है -- सुयश ने छूकर देखा-- शरीर ठण्डा पड़ चुका था -- नाड़ी भी गायब थी।

सभी किसी अनहोनी की आशंका से काँप उठे। सुयश ने डॉक्टर नीरज अवस्थी को फोन किया। फिर पापा के सिर के नीचे ठीक से तकिया जमाया। पेपर को उठाकर एकतरफ रखना चाहा तो उसकी नजर एक हेडलाइन पर अटक गई - ''पंचोली क्लीनिक पर छापा - अनेक गड़बड़ियाँ उजागर''। वह पेपर उठाकर पढ़ने लगा - ''आज सुबह स्वास्थ्य विभाग और विजीलेंस की टीम ने संयुक्त रूप से पंचोली क्लीनिक पर छापा मारा। कुछ दिनों से क्लीनिक में अनियमितताओं की अनेक शिकायतें प्राप्त हुई थी। पिछले छह माहों में क्लीनिक में हार्ट सर्जरी और एंज्योप्लास्टी करानेवाले मरीजों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से चार गुनी बढ़ गई थी - हृदयरोगियों की संख्या में अचानक हुई इस वृद्धि से स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी सकते में थे। जाँच के दौरान रिकॉर्ड में जहाँ भारी गड़बड़ियां मिलीं वहीं स्टॉक में नकली और एक्सपायरी डेट के स्टेण्ट पकड़े गए। इन स्टेण्ट की डेट पिछले साल नवम्बर में ही समाप्त हो चुकी थी। पिछले सात माह से यही स्टेण्ट मरीजों को लगाए जा रहे थे -''खबर पढ़ते हुए सुयश को चक्कर आ गए -- वह गिरते गिरते बचा। एक नजर उसने बृजभूषण के चेहरे पर डाली और जोर से चीख मारकर रो पड़ा।

अरुण अर्णव खरे, डी–1/35 दानिश नगर, होशंगाबाद रोड, भोपाल, पिन–462 026
फोन : 09893007744, ई–मेल : arunarnaw@gmail.com

प्रकाशनार्थ क्या यही-सच है?

रीना सिन्हा

मगर शायद भगवान को मेरा बीनू के लिए इस तरह खोना, उस खोने में अपने आप को पाना और इस प्राप्ति के बाद एक एहसास का जन्म लेना-सुख के एहसास को पसंद नहीं था। बीनू मेरे पास था और मेरे पास थी भय की एक आशंका-पता नहीं, मैं बीनू की सामाजिक रूप से हमराही बन पाऊंगी कि नहीं। इस लटकन के बीच एक दिन अचानक बीनू ने बताया, ''लता, मेरा रिजल्ट आ गया। मुझे बंबई की एक संस्था में पढ़ने के लिए अब जाना होगा। पांच वर्षों की एक लम्बी तपस्या के बाद मेरे सपनों का संसार अब सच होने जा रहा है। बंबई में तीन वर्ष पढ़ने के बाद मैं एक अच्छी नौकरी में रहूंगा।

''जिन्दगी जीना कितना कठिन है, लता''। उसका यह कहना मुझे आज भी अक्सर याद आता है।

उसका असल नाम विनोद था, मगर मैं उसे बीनू कहती थी।

विशाल और उदार हृदय वाला बीनू मुझे पढ़ाने आता था। मैं उस समय 10वीं की छात्र थी और वह स्नातक का। गरीब परिवार का होने के वह पटना का अपना खर्च ट्यूशन से चलाया करता।

उसके चेहरे पर हमेशा एक दर्द की लकीर छाई रहती थी। मैंने हमेशा उसकी झील-सी सुखद और सागर-सी गहरी आंखों में कुछ ढूंढ़ने की कोशिश करनी चाही, लेकिन मैं ऐसा नहीं कर पाती थी। पता नही क्यों ?

मैं अक्सर सोचती, 'बीनू में ऐसा क्या है कि मैं हमेशा उसके विषय में जानने को उत्सुक रहती हूं। उसके दर्द को जानना चाहती हूं और खुद भी उस दर्द की वेदना को झेलना चाहती हूं।

आखिर एक दिन मैंने उस दर्द को जान लिया। कितना प्यारा था वह क्षण, जब मुझे उसके दर्द से साक्षात्कार हुआ। उसने भी जान लिया कि अब उसका राज केवल राज नहीं। मगर उसने वादा लिया था, मैं इस बात को अपने परिवार वालों या अपनी सहेलियों को नहीं बताऊंगी

मैंने भी तो हामी भर दी थी इस राज से एकाकार हो इस बीनू की हमराही बनने की।

वह गंभीर रहता था, जबकि मैं हो-हो कर हंसने वाली किशोरी बाला थी। साथ ही वह रोजमर्रा के गमों को पचाने में भी काफी

माहिर था। आज भी मुझे याद है, एक दिन जब वह पढ़ाने आया था, वह काफी कमजोर-सा, हारा और भूखा लग रहा था। मैंने बार-बार उसकी इस हालत का कारण जानना चाहा। घंटे भर की मेरी जिद्द के बाद वह कारण बताने को तैयार तो हुआ, मगर एक शर्त पर कि मेरा दिया वह कुछ भी नहीं खाएगा और मैं आज का अपना भोजन बंद नहीं करूँगी।

लाचार मन से मैंने यह शर्त मान ली और तब मुझे पता चला कि परसों उसने कहीं सारा रूपया खो दिया और तब से भूखा है।

अब मेरी अजब स्थिति थी एक तरफ वादे का सवाल था तो दूसरी तरफ मेरा दिल बीनू के लिए जल्द से जल्द भोजन की व्यवस्था करने के लिए छटपटा रहा था।

बीनू अपनी जिद्द पर अड़ा रहा और बिना कुछ खाए मेरे घर से चला गया।

इतने जिद्दी स्वभाव वाला बीनू दिल से एक छोटे बच्चे-सा सीधा भी था। शैतानी में अव्वल रहने वाली मैं अक्सर उसे परेशान भी कर देती थी। मगर मैंने कभी भी बीनू को गुस्सा करते नहीं देखा।

बीनू से मेरा पढ़ने का कार्यक्रम चलता रहा और समय अपने पन्ने फाड़ता उड़ता रहा, मगर मुझे तो न समय की जानकारी थी और न अपने आप की। सुबह से रात तक मेरे ख्यालों में बीनू ही बीनू रहता और मैं सपनों की दुनिया की महारानी बनी कल्पना के संसार में खोई रहती।

पता नहीं, सपनों की इस दुनिया में मैं खुद ही कूद पड़ी थी या कि.....

प्यार की यह प्रथम अनुभूति थी कि हमाराज होने का सुखद अनुभव, उसकी हर बात मैं ध्यान से सुनती। उसके लिखे गए रफ पत्रों को भी मैं संभाल कर रखती और सुबह उठने के साथ ही शाम का इंतजार करने लगती, जब वह आता था और.....

बीनू की जिन्दगी की कहानी भी कुछ अजब थी। मैं अक्सर बीनू की जिन्दगी की कहानी के विषय में सोचती और घंटों खोई रहती।

मगर शायद भगवान को मेरा बीनू के लिए इस तरह खोना, उस खोन में अपने आप को पाना और इस प्राप्ति के बाद एक एहसास का जन्म लेना-सुख के एहसास को पसंद नहीं था। बीनू मेरे पास था और मेरे पास थी भय की एक आशंका-पता नहीं, मैं बीनू की सामाजिक रूप से हमराही बन पाऊंगी कि नहीं। इस लटकन के बीच एक दिन अचानक बीनू ने बताया, ''लता, मेरा रिजल्ट आ गया। मुझे बंबई की एक संस्था में पढ़ने के लिए अब जाना होगा। पांच वर्षों की एक लम्बी तपस्या के बाद मेरे सपनों का संसार अब सच होने जा रहा है। बंबई में तीन वर्ष पढ़ने के बाद मैं एक अच्छी नौकरी में रहूंगा। लता, तुम यह महसूस भी नहीं कर पाओगी, जब मैं पढ़ने के बाद सी.ए. बनूंगा तो मेरे पिता कितने खुश होंगे, एक अनपढ़ गांव वाले का बेटा सी.ए., पांच हजार की नौकरी, बंगला, कार....''

बीनू की आंखों में गजब की खुशी थी, और मैं जहां एक तरफ बहुत खुश थी, वहीं मेरे दु:ख का पारावार नहीं था। आज का क्षण मेरी जिन्दगी का सबसे अच्छा क्षण था। यह क्षण मेरी जिन्दगी का सबसे दु:खी क्षण भी था। मैं हंस रही थी, मैं रो रही थी।

बीनू का पटना छोड़ कर जाना मेरे लिए एक हादसा ही था। एक तरफ भगवान ने बीनू की एक इच्छा पूरी कर दी, तो दूसरी तरफ उन्होंने सब कुछ छीन सा लिया था।

और बीनू बंबई चला गया। जाने के दिन वह मुझसे मिलने आया। उसकी इच्छा थी, मैं उसे विदा करने स्टेशन तक आऊं। वह बार-बार अपनी इस इच्छा को दुहरा रहा था। उसकी इच्छा थी, ट्रेन के चलते समय तक मैं उसकी आंखों के सामने रहूं। मगर शायद प्रभु को यह मंजूर नहीं था। रोज देर से घर आने वाले मेरे एस.पी. पिता उस दिन काफी पहले घर आ गए थे।

और आप मेरे पिता को नहीं जानते। घर आने के साथ ही उनका एस.पी. का काम घर के लोगों पर चालू हो जाता। कौन-कौन घर में है? यदि कोई घर में नहीं है तो क्यों नहीं है? उसके आने के साथ उससे वैसे ही जवाब-तलब किया जाता, जैसे वह कोई संगीन जुर्म का अपराधी हो और उसके जुर्म का इकबाल करवा केस डायरी तैयार करनी है।

पिता के घर में रहने के बाद शाम या रात के समय मेरा बाहर निकलना असंभव था।

बीनू के ट्रेन का समय भी था रात के दस बजे का। मतलब कि मैं अपनी सारी कोशिश करने के बाद भी इतनी रात में घर से नहीं निकल सकती थी।

दिल को समझाया, जब बीनू का पत्र आएगा, उसे जवाब देकर अपनी मजबूरी बता दूंगी।

मुझे बीनू पर भरोसा था। बीनू के जाने के बाद दूसरे दिन से ही मैं उसके पत्र की प्रतिक्षा करने लगी।

आज मेरे लिए बीनू की याद ही मेरा एकमात्र सहारा थी। हर दिन दोपहर के एक बजे घर के मुख्य दरवाजे पर खड़ी पोस्टमैन की राह देखती। हर दिन लगता, आज-आज तो जरूर पत्र आएगा।

पत्र की इस इंतजार के बीच मैं मैट्रिक कर गई। फिर इंटर और फिर स्नातक और फिर एम.ए., मगर बीनू ने पत्र नहीं ही लिखा।

कभी सोची, बीनू बदल गया- और फिर अपनी ही सोच पर विश्वास नहीं कर पाती- क्या बीनू भी बदल सकता है? जानने की चाहत होती, सत्य क्या है - बीनू का वह रूप, जो मुझे पढ़ाता था या यह खामोशी। छह वर्षों में एक भी पत्र नहीं।

कभी मन करता, बंबई जाकर उसकी खोज करूं। फिर लगता, इस महानगरी में उसे कैसे और कहां खोज पाऊंगी और फिर इतने लम्बे अंतराल में यह भी आवश्यक नहीं कि उसकी नौकरी बंबई में ही लगी हो। दिल्ली, कलकत्ता या मद्रास, कहीं भी तो वह हो सकता है।

इस बीच घर में पिता और मां, दोनों ही अब मेरे विवाह के लिए प्रयास करने लगे। जान-पहचान वालों से कहा जाने लगा। अखबारों में छपने वाले विज्ञापनों पर लिफाफा डाला जाने लगा। कई लड़के वालों के घर से आगे बात बढ़ाने और लड़की दिखाने के लिए संदेश भी आने लगे। और बिना कुछ सोचे-समझे घरवालों के दबाव में गुलाबी साड़ी पहन प्रदर्शन को प्रस्तुत होने लगी।

लड़के आते, उनके माता-पिता आते, ढेर सारे प्रश्न, वही रटे-रटाए उत्तर। माँ का दौड़-दौड़ कर लड़के और उसके परिवार वालों का स्वागत करना।

इस क्रम में आइ.ए.एस. लड़के और उसके परिवार वालों ने मुझे पसंद कर लिया।

मैं कुछ निर्णय नहीं कर पा रही थी। एक तरफ बीनू की खामोशी थी, उसका लापता होना था, उसकी यादें थीं, उसके साथ बीते क्षणों की यादें थी, तो दूसरी तरफ एक आकर्षक, पढ़ा-लिखा, अच्छे परिवार का आइ.ए.एस. विपुल था।

दिल और दिमाग में लड़ाई शुरू हो गई थी। दोनों के अपने-अपने तर्क थे। दिल कहता था, बीनू से जरूर मुलाकात होगी। दिमाग कहता था, निश्चित (विपुल) को छोड़ अनिश्चित (बीनू) की प्रतीक्षा करना मूर्खता है।

दिल कहता, मन से तो मैंने बीनू को अपना पति मान लिया। दिमाग कहता, मानने से क्या होता है। जब तक अग्नि के सात फेरे न लिए जाएं, मांग में सिंदूर न डाला जाए और समाज को इन सबकी जानकारी न हो, तब तक कौन पति-कौन पत्नी?

दिल और दिमाग में लड़ाई होती रही और पता ही नहीं चला, कब मेरे मां-बाप ने मुझे विपुल के हाथों सौंप दिया।

नया घर, नया परिवार, नए रिश्ते, सब कुछ नया। पुराना था तो केवल मेरा मन, जो अभी भी इस बदलाव को सहजता से नहीं ले पा रहा था।

विपुल जब कुछ प्रेम-प्यार की बातें करते थे तो मुझे लगता, मेरा उन बातों को सुनना भी पाप है- धोखा है अपने बीनू के साथ। विपुल काफी समझदारी से पेश आते। मेरी सारी अरूचि और उपेक्षा को सहते, फिर भी मुझे आदर और सम्मान देते।

एक आइ.ए.एस. की पत्नी होने के कारण आस-पास के समाज और ससुराल में भी मेरी काफी इज्जत थी। सासा और ससुर भी बहू, बहू, बेटी, बेटी कह कर अपना प्यार लुटाते। नौकर-चाकर और इनके मातहत मेरे आगे-पीछे रहते।

एक दिन यूं ही शाम को अकेले अपने मकान के सामने वाली सड़क पर टहल रही थी कि लगा मैं खुशी से पागल हो जाऊंगी। सामने से सीधे बीनू आ रहा था।

बीनू काफी पास आ गया और मैं चिल्ला रही थी- ''बीनू तुम कहां थे ?'' कुछ बातें कर मैं उसे अपने घर में ले आई। लग रहा था, मुझे सब खुशी मिल गई। मेरा अब तक का धैर्य जवाब दे रहा था। मैं आस-पास किसी और को नहीं देख बीनू से लिपट गई, ''बीनू, मुझे अब भी शादी कर लो- मैं तुम्हारे लिए विपुल को छोड़ दूंगी, ''मैं रट लगाए जा रही थी कि अचानक बीनू ने अपने से अलग करते हुए मुझसे कहा- ''मगर लता, मैं तुम्हारी तरह नहीं कर सकता, मैं अपनी पत्नी को नहीं छोड़ सकता। किशोरावस्था का प्रेम बेली के फूलों जैसा होता है, जिसकी कभी-कभी खुशबू ली जा सकती है, मगर..... लता, बचपन छोड़ो और विपुल को अपना सारा प्यार दो। वह तुम्हारा वर्तमान है, वही तुम्हारा सच है।''

बीनू के जाने के बाद मेरे में मैं एक साफ तस्वीर उभरती है- विपुल ही मेरा सच है, वह मेरा जीवन है और मैं उसकी सब कुछ हूँ''।

मैं विपुल का इन्तजार करने लगती हूँ। कमरे में विपुल की टंगी तस्वीरें बहुत प्यारी लगने लगी हैं। अब से पहले जो जिंदगी मैंने जी, वो प्यार का आकाश था और अब जो मैं जीने जा रही हूँ, वो प्यार की जमीं। यही सच है,..... यही सच है....!

रीना सिन्हा, द्वारा- अरविन्द कुमार मुकुल, एल.एफ.27, श्रीकृष्णापुरी, पटना - 800001
मो0 - 09931918578, फोन- 0612-2540275, e-mail : mukul.arvind@gmail.com

✧ ✧ ✧

कबूल है

गोविन्द सिंह वर्मा

कुछ पल खामोशी रही, फिर मैं उस आधे खुले दरवाजे से सटकर खड़ी हुई रहमत के किनारे से होकर अंदर आ गया। उसने दरवाजा बंद कर दिया। मुड़ कर देख देखा तो रहमत की आंखों से आँसू लुढकते हुए उसके गालों से होकर उसके दुपट्टे में जाकर छिप रहे थे। वो मेरे सामने के सोफे पर आकर बैठ गई।

"ये लीजिए आ गया आपका मकान नम्बर 309।" – टैक्सी वाले ने गाड़ी रोक कर कहा ।

मैंने गर्दन उचका कर उस मकान के बाहर लगी प्लेट को देखा, रहमत खान, 309 एक लंबी साँस लेकर मैं उतर गया और टैक्सी वाले उस नोजवान लड़के को किराए के पैसे दे दिए। वो शायद मुझे छुट्टे पैसे लौटने वाला था, उससे पहले ही मैंने कहा – "रख ले बेटा, इतना तो चलता है।" "बुरा न माने तो एक बात पूछ सकता हूँ आपसे? "उसने कहा तो मैंने हाँ में सिर हिला दिया।

"इतना सारा सामान लेकर आये है आप, आप घर छोड़कर यही रहने आए है क्या?

उसको क्या जवाब देता मैं, मुझे खुद कुछ मालूम नही था। नोकरी जल्दी छोड़ दी। पैसो का ढेर लग गया था। पता नही जिंदगी की ट्रेन किस पटरी पर चल रही थी।

जिस लड़की से शादी करना चाही उसने किसी और से शादी कर ली। मेरे अपने घर वाले अपने न रहे। उसे क्या बताता मैं।

मैंने कहा – "हो सकता है बेटा यही रहने लग जाऊं"।

जब वो सलाम करके चला गया तो मैंने अपना सामान उठाया और उस दरवाजे पर लगी घंटी बजाई ।

''आ रही हूँ'' - आवाज धीमी थी पर मेरे अंदर उतर गई । मेरी रहमत की आवाज थी यह ।

''कितनी बार कहा है मैंने यहाँ क्रिकेट न खेला करो। मैं थक जाती हुँ, बार-बार दरवाजे तक आने में'' - रहमत की पायल की आवाज के साथ-साथ उसके बुदबुदाने की आवाज भी आ रही थी।

दरवाजा खोलते ही उसने एक पल मुझे देखा और फिर नजरे झुका ली।

कुछ पल खामोशी रही, फिर मैं उस आधे खुले दरवाजे से सटकर खड़ी हुई रहमत के किनारे से होकर अंदर आ गया। उसने दरवाजा बंद कर दिया। मुड़ कर देख देखा तो रहमत की आंखों से आँसू लुढकते हुए उसके गालों से होकर उसके दुपट्टे में जाकर छिप रहे थे। वो मेरे सामने के सोफे पर आकर बैठ गई।

मैं इतनी भी हिम्मत नही कर पाया कि उसके आँसू पोछ दूँ। ''रहमत .....कैसी हो तुम?'' - मैंने पूछा तो उसने अपने आँसुओ को हथेली में समेट लिया और बोली - ''मैं खैरियत में हुँ, आप बताइए?''

मैं क्या बताता उसे । जिंदगी कुछ इस कदर गुजरी की मैं खुद नही समझ पाया।

मैं इधर-उधर नजरे दौड़ाने लगा। अंदर एक मेज पर सुंदर सा बक्सा रखा था । ''जाकर ले लो कबीर उसे, वो तुम्हारा ही बक्सा है।'' उसने कहा तो मैं मुस्कुरा दिया।

रहमत की नजर हमेशा मेरी नजरो को पकड़ लेती है।

मैंने जाकर वो बक्सा उठा लिया और उसे बाहर ले आया। उसे खोला तो मेरी आँखें सीधा रहमत की तरफ गई।

''इसके अलावा मेरे पास तुम्हारी कोई और निशानी नही थी। इस लिए मैंने इसे छुपा लिया था।'' रहमत ने मेरी आँखों को जवाब दिया।

मैंने उस बक्से को खोला और उसमें रखी हुई चॉक को एक -एक करके बाहर निकालना शुरू किया । हर चॉक अपने आप मे मेरी जिंदगी का हिस्सा थी । मेरी जिंदगी को बयां करती थी।

पूरी 121 चॉक थी। चॉक कहना गलत होगा, चॉक के टुकड़े थे।

जब भी रहमत कॉलेज आती, बरामदे से ही उसकी पायल की आवाज मेरे कानों में गूंजने लगती थी। उस आवाज को सुनने के कारण ही टीचर ने चॉक के टुकड़ों से मुझे मारा था। मैंने उन टुकड़ों को अपने प्यार की निशानी बना कर संभाल रखा था। मेरी रहमत की निशानी। कभी पायल की आवाज मे खोने के लिए तो कभी उसकी मुस्कान को देखते रहने के लिए यह इनाम मिले थे

मुझे। न जाने कितने किस्से थे हमारी मोहब्बत के। वो पीपल का पेड़, वो सायकल स्टैंड, वो टीचर की डांट, गुस्से में आकर उसके नाखुन से मेरे हाथ पर बने निशान और न जाने क्या-क्या। यह सब आज भी गवाही देते है हमारी मोहब्बत की।

रहमत ने शायद अपने अब्बूजान की इज्जत की खातिर किसी और से निकाह कर लिया। मैंने भी गुस्से मैं आकर उससे दूरियां बना ली। एक भी बार उससे उसका हाल नही पूछा। अपने कॉलेज के दोस्तो से उसके बारे में पता जरूर करता रहता पर अब मुझे समाज का डर लगने लगा था। आखिरकार अब मैं भी परिवार वाला था। हाँ पत्नी कभी की स्वर्गवासी हो गई थी।

कुछ दिनों से रहमत की लिखी कहानियां पढ़ रहा था, वहीं से उसका पता निकाला और निकल पड़ा उससे मिलने। अब समाज की परवाह नही थी मुझे। मुझे रहमत की परवाह थी।

अचानक रहमत मुस्कुरा दी। पूरे 25 साल बीत गए थे इस हँसी को देखे हुए।

''पूछोगे नही, मैंने तुमसे शादी क्यों नही की?'' रहमत ने कहा तो मैं कुछ देर खामोश रहा।

''वैसे तुम्हारी उम्र कितनी हो गई है रहमत?'' मैंने पूछा तो वो बोली - ''हटो, मैं क्यों बताऊ? पहले तुम बताओ?

''पचास का हो गया हूँ .....। मैंने एक लंबी साँस ली और बोला - ''रहमत, मैं बाकी की जिंदगी तुम्हारे साथ बिताना चाहता हुँ।''

वो कुछ देर मुझे देखती रही और फिर बोली - ''कबूल है, कबूल है, कबूल हैं।''

गोविंद सिंह वर्मा, आर. आई. ई. भोपाल, फोन – 8839219042

✧ ✧ ✧

करवा चौथ और नारी की अस्मिता : वर्त्तमान संदर्भ

डॉ. साधना गुप्ता

पूजन दो बार किया जाता है दिन में सूर्य की उपस्थिति में, और रात को चन्द्र दर्शन पर। वैसे तो यह पूजन की तैयारी भी एक सप्ताह पूर्व से ही आरम्भ हो जाती है। एक सप्ताह पूर्व मिट्टी के तसले में गेहूँ बोए जाते हैं जो अंकुरित होकर चतुर्थी तक आठ-दस इंच के पौधों के रूप में विकसित हो जाते हैं, अब इन्हें 'ज्वारे' कहा जाता है। पूजा की थाली तैयार की जाती है जिसमें रोली, चावल, मेंहदी, लच्छा, चीर (वस्त्र), प्रसाद के लिए मिष्ठान्न, पैसे, घी का दीपक, माचिस, जल का कलश, खाजा (मैदा की बनी पापड़ी) जिनकी संख्या दस होती है, करवा - जिसमें थोड़ा सा जल भरा होता है एवं नली पर जलकुंभी की कली लगायी जाती हैं, चौथ-गणेश की हाथ से बनाई गई मिट्टी की प्रतिमा सजायी जाती है।

"आस्था न काँपे तो पाशण से भी रसधारा प्रवाहित हो जाती है" - इस सत्य से साक्षात्कार प्रत्येक आस्तिक जीवन की कठिन परिस्थितियों में अवश्य करता है। इसी आस्था के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है - "करवा चौथ"। जीवन की उमंग से परिपूर्ण नव वर-वधू एक अनजान व्यक्ति के साथ बिना किसी लिखित वक्तव्य के अग्नि एवं कुटुम्बजनों की साक्षी में जन्म-जन्मान्तर तक साथ निभाने का संकल्प करते हैं। नव-वधू अनेक रिश्तों के साथ 'बहू', 'गृहलक्ष्मी' के रूप में नवीन गृह में प्रवेश करती है और वहीं की हो जाती है। जल में नमक के समान रच-बस जाती है उस घर-परिवार में।

ऐसे में बहू, भावज, चाची, ताई इत्यादि रिश्तों एवं पारिवारिक दायित्वों के बोझ तले पति-पत्नी के रिश्ते की रस-धारा सूख न जाए, यह रस-धारा अनवरत प्रवाहित रहे, उसमें उमंग, उत्साह एवं सरसता हर-पल बनी रहे, इस हेतु राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पंजाब एवं महाराष्ट्र में परम्परागत रूप में मनाया जाने वाला पर्व है - "करवा चौथ"। यह कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को मनाया जाता है।

व्रत का प्रारम्भ चतुर्थी को सूर्योदय के पूर्व से होता है परन्तु तैयारी कई दिन पूर्व से ही उमंग-उल्लास के संग प्रारम्भ हो जाती है। पूजा के समय पत्नी के पहनने के लिए जो वस्त्र खरीदे जाते हैं, उसमें पति-पत्नी द्वारा परस्पर पसन्द का ध्यान रखा जाता है। जो परस्पर प्रेम व समर्पण का प्रतीक है। साथ में

श्रृंगार-प्रसाधन एवं आभूषण भी आर्थिक स्थिति के अनुसार खरीदे जाते हैं जिसका उद्देश्य होता है- पत्नी दुल्हन सी सुन्दर लगे।

व्रत के एक दिन पूर्व पत्नी द्वारा हांथों एवं पैरों पर मेंहदी सजायी जाती है। इसी दिन पति द्वारा पत्नी की पसन्द का कोई मिष्ठान्न लाया जाता है जिसे व्रत के दिन सूर्योदय के पूर्व खाकर, पानी पीकर पत्नी द्वारा व्रत का प्रारम्भ किया जाता है। अपने जीवन साथी की लम्बी उम्र एवं स्वस्थ जीवन की कामना के साथ उसके रंग में रंगी वह दिन भर निर्जला रहती है और पूजन की तैयारी करती है।

पूजन दो बार किया जाता है दिन में सूर्य की उपस्थिति में, और रात को चन्द्र दर्शन पर। वैसे तो यह पूजन की तैयारी भी एक सप्ताह पूर्व से ही आरम्भ हो जाती है। एक सप्ताह पूर्व मिट्टी के तसले में गेहूँ बोए जाते हैं जो अंकुरित होकर चतुर्थी तक आठ-दस इंच के पौधों के रूप में विकसित हो जाते हैं, अब इन्हें 'ज्वारे' कहा जाता है। पूजा की थाली तैयार की जाती है जिसमें रोली, चावल, मेंहदी, लच्छा, चीर (वस्त्र), प्रसाद के लिए मिष्ठान्न, पैसे, घी का दीपक, माचिस, जल का कलश, खाजा (मैदा की बनी पापड़ी) जिनकी संख्या दस होती है, करवा - जिसमें थोड़ा सा जल भरा होता है एवं नली पर जलकुंभी की कली लगायी जाती हैं, चौथ-गणेश की हाथ से बनाई गई मिट्टी की प्रतिमा सजायी जाती है।

प्रथम बार का पूजन दिन में मुहूर्त देखकर घर के आँगन में परिवार की, पड़ोस की महिलाओं द्वारा एक साथ सामूहिक रूप से किया जाता है। व्रत रखने वाली सभी महिलाएं पति द्वारा लाए गए वस्त्र धारण करती है, सोलह श्रृंगार करती हैं और अपनी पूजन सामग्री के संग पूजा स्थल पर आ जाती हैं। सभी एक बड़ा सा गोला बनाकर बैठ जाती हैं। अब पूजन आरम्भ होता है। सभी स्वयं के सम्मुख स्थित स्थान को मिट्टी या पानी से लीप कर गोलाकार रूप में साफ करती है, उस पर रोली से 'स्वस्तिक' का चिह्न अंकित करती हैं। अब इस स्थल पर ज्वारे का तसला, करवा-जिस पर दस खाजे रख देती है एवं नली पर जलकुंभी की कली लगा देती है, चौथ-गणेश की प्रतिमा एवं पूजन सामग्री की थाली रखी जाती है।

सर्वप्रथम चौथ माता एवं गणेश जी का पूजन किया जाता है। कलश के जल के छींटे लगाकर स्नान करवाकर रोली, चावल, लच्छा, मेहन्दी लगाकर, चीर उड़ाया जाता है, मिष्ठान्न का भोग लगाया जाता है। फिर इस विधि से क्रमशः करवा एवं ज्वारे की पूजा की जाती है, दीप प्रज्ज्वलित कर आरती की जाती है, सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। इस पूजन के बाद चौथमाता की कहानी कही जाती है जो इस प्रकार है - महिलाएं हाथ में इस चना दाल ले लेती है।

एक साहूकार के सात बेटे, एक बेटी थी। सभी के विवाह हो गए। लड़की अभी पिता के घर ही थी। बेटे व्यापार करने बाहर गए थे, बहुएँ घर पर ही रही। बेटों को जिस दिन लौटना था, उस दिन करवा-चौथ थी। बहुओं ने व्रत रखा, तो जिद करके बेटी भी व्रत रखती है। भाई सन्ध्या को व्यापार से आते हैं तो बहिन से अपने साथ भोजन करने की बात कहते हैं। बहिन व्रत की कहती है तब भाई सोचते हैं बहिन चन्द्रमा निकलने तक कैसे भूखी-प्यासी रहेगी? अतः वे घर से दूर जाकर आग जलाते हैं, आरसी का चन्द्रमा एवं चलनी से तारें छिंटकाते हैं और बहिन से चन्द्र पूजन करने को कहते हैं। वह अपनी भाभियों से कहती है तो वे कहती हैं - छोटा चन्द्रमा आपके लिए है, हम

बड़े चन्द्र का पूजन करेंगी, तब बहिन पूजा करके भाइयों के संग भोजन करने लगी, तो पहले कोर में बाल निकलता है, वह अपशकुन की आशंका करती है तो माँ उसे जमीन पर रख दूसरा कोर खाने को कहती है। दूसरा कोर तोड़ा तो बिल्ली छींक देती है, माँ के कहने पर उसे भी जमीन पर रखकर भोजन करती है।

उधर ससुराल में पति की तबीयत बिगड़ने पर घुड़सवार रात को ही उसे लेने आता है। सास के कहने पर भाभियाँ उसके कपड़े जमाने लगती है तो उन्हें सभी कपड़े काले नजर आते हैं। अपशकुन की आशंका के साथ उन्हीं में से कपड़े रखे जाते हैं और बड़ी भावज ननद की गोदी में पान, सुपारी और कंकू की डिबिया रखकर कहती है – ''ससुराल की कंकड़ पर पहुंचते ही जो भी महिला मिले, उसको टीका लगाकर पान-सुपारी गोदी में रखकर कहना – ''मूडो मांडू, टीको कांडू, पान-सुपारी गोदी मेलूं, सुहाग दो बाई सुहाग दो।'' जो भी मिले ऐसे ही करती जाना और उसे विदा किया।

ऐसा ही करते हुए वह घर पहुँच गई। सास के पैर छूने लगी तो उन्होंने कदम हटा लिए, गालियाँ दी। फिर ननद मिली तो उसके पैर छुए, ननद ने आशीर्वाद दिया – ''सेली होजी सपूतडी, दूधा नहा जो, पूतां फल तो, सात बेटों की मां होजो। मीठी खाजो, पीलो ओढ़ जो, गंगा जमना में जब तक पानी रहे, तब तक तुम्हारो सुहाग रहे।'' (चने की दाल पल्लू में बांध अब गेहूं के दस दाने हाथ में लेकर कथा सुनी जाती है।)

वह अपने कमरे में जाती है। पति पंलग पर सो रहा होता है पर उसके बात करने पर बोलता नहीं। वह घबराकर सास से कहती है, सास अपने बेटे की मौत का इलजाम बहू पर लगाकर रोने लगती है। जब उसे ले जाने की तैयारी की जाती है तो बहू अपने सास-ससुर से कहती है – ''मेरे भाग्य का लिखा हो चुका। मेरी मानो, इन्हें जंगल में एक झोपड़ी बनवाकर वहाँ सुलवा दो और साल भर का सामान रखवा दो।

उसकी इस बात को सास नहीं मानती पर ससुरजी मान लेते हैं और वैसा ही करवा देते हैं। अब वह प्रतिदिन पति को नहलाकर वस्त्र बदल देती। समय सेवा करते-करते बीतने लगा। आशाढ़ आ गया तो उसने झोपड़ी के आगे पीछे 'कोले-कुंभी' के बीज बो दिये। चौथ माता (दशरथी माता) से प्रार्थना की – ''हे माता ! यदि मेरे सुहाग में सत्य हो तो झोपड़ी के आगे वाली बेल पीछे तक और पीछे वाली बेल आगे तक फूल-पत्तों से भरपूर होगी, तो मेरा विश्वास आगे भी बना रहेगा। ऐसा ही अगले चार माह में हो गया।

वर्ष पूरा हुआ कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को उसने व्रत रखा। नहा-धो कर बर्तन देखे तो खाली थे। तब उसने मिट्टी गूँदकर करवा, दस पापड़ी, दीया और दशरथी माता की मूर्ति बनाई। दीपक में पानी डालकर दीपक जलाया। कोला-कुंभी के फूल-पत्तों से माला बनाई। चन्द्रमा का प्रकाश हुआ तो वह बाहर निकली। उसने देखा – ''सामने से सफेद घोड़े पर सफेद वस्त्र धारण किए दशरथी माता आ रही है। वह फूलों की माला लेकर उनके सामने गई और कहने लगी –''लो माई, कड़ो-कुमड़ों फूल की माला, सुहाग दो, माँ सुहाग दो।'' माँ ने कहा – सुहाग देंगे, तेरे भाई, बीर, जिन्होंने जंगल में आग लगाई, आरसी का चाँद बनाया, चलनी से तारे छिटकाये। वे ही देंगे तुझे सुहाग और अन्तर्ध्यान हो गई।

थोड़ी-थोड़ी देर से एक के बाद एक माताएँ अलग-अलग रूपों में आई। सभी से यही बात हुई। जब नवीं बहिन आई तो उसने कहा - मेरी दसवीं बहिन आएगी, वो ही तुझे सुहाग देगी, उनका रूप डरावना होगा, आंधी-तूफान के साथ आएगी। डरना मत, पैर पकड़ लेना, जाने मत देना। वे ही तेरा सुहाग अमर करेगी। बहू ने कहा - मैं डरती नहीं।

जब दसवीं माता आई तो वही वार्तालाप पुनः हुआ। बहू ने कहा - वे भाई नहीं, बेरी थे। माँ के पावं पकड़ लिए, कहा - ''माँ आपको सुहाग देना ही पड़ेगा, आपको जाने नहीं दूंगी। तब दयार्द्र हो माँ पाड़े पर से उतरकर झोपड़ी में गई, जहाँ बहू ने अपने पति को सुलाया था। माँ ने मिट्टी का करवा मँगवाया, उसमें से जल लेकर पिलाया और मिट्टी की पापड़ी का टुकड़ा तोड़कर उसे खिलाया तो मृत पति जीवित हो उठा। माँ के स्पर्श से मिट्टी का करवा सोने का, पापड़ी मैदा की हो गई।

दोनों माँ के चरण छूते हैं। माँ कहती है - बेटा तुझे नींद आई, ऐसी किसी को न आवे। वे दोनों को आशीर्वाद देती है। उनके जीने के बाद झोपड़ी की जगह महल हो गया जिसे सवेरे देखकर ग्वाले आश्चर्य करने लगे। तभी बहू उन्हें कहती है - गाँव में जाकर सेठ जी को हमारी कुशलता के समाचार देना।

ग्वालों के कहने पर सेठानी इसे मजाक समझती है परन्तु सेठजी बात पर विश्वास कर, बेटे-बहू से मिलने जाने के लिए पगड़ी बाँध, लाठी उठाते हैं और कहते हैं - ''मेरे बेटे बहू में सत होवे तो रूपहली पाग और सोने की ड़ाग हो जावे।'' ऐसा ही हो जाता है। सेठ जंगल में झोपड़ी की जगह महल देख दरवाजे से बहू को आवाज लगाते हैं तो बहू कहती है - ''ससुर जी, ये फाटक धर्म के होंगे, तो खुल जावेंगे और अधर्म के होंगे तो नहीं खुलेंगे।''

फाटक स्वतः खुल जाते हैं। ससुरजी अन्दर जाते हैं, बहू को धन्य मान प्रणाम में झुकते हैं तो बहू उन्हें यह कहकर रोकती है - ''क्या ओलाती का पानी कभी मगरे चढ़ता है? उन्हें प्रणाम करती है। उसका पति भी वहाँ आकर उन्हें प्रणाम करता है। सेठ जी गांव जाकर सेठानी व गाँव वालों के साथ गाजे-बाजे से उन्हें घर लेकर आते हैं और सुखपूर्वक रहते हैं।

दशरथी माँ ने जेसा पहले कोप किया, वैसा किसी पर न करना। बाद में जैसी टूटमान हुई, वैसे सब पर होना।

कथा पूर्ण हुई। हाथ के गेहूं के दस दाने चढ़ा दिए जाते हैं। पल्ले में बंधी दाल भी एक-एक कर इस दोहे के उच्चारण के साथ दशरथी माँ को चढ़ायी जाती है -

'' आड़ी बाड़ी सोने की बाड़ी, जहाँ बैठी दशरथी रानी।
माली सींचे, मालन ढोलें, सुहाग दो दशरथी रानी।''

नोट - इस कथा में क्षेत्रनुसार कुछ परिवर्तन होता है इसी प्रकार पूजन विधि व सामग्री में भी।

इसके पश्चात् बड़ों के आशीर्वाद हेतु अपनों से पद व उम्र में बड़ी महिलाओं के पैर लाग (चरण छू) आशीर्वाद लेती है।

दूसरी बार का पूजन चांद निकलने पर प्रारम्भ होता है। पूजा की थाली एवं करवा (खाजे हटा देते हैं) लेकर छत पर जाती है। वहाँ चन्द्रपूजन कर जल से चन्द्र को अर्ध्य देती है। चलनी में चन्द्र एवं अपने पति का चेहरा देखती है, उसके बाद पति के हाथों जल ग्रहण करती है।

करवा, खाजे एवं श्रद्धानुसार उसके साथ सुहाग सामग्री रख 'बायना' निकाल ससुराल पक्ष की महिला को देकर आशीर्वाद लेती है एवं फिर भोजन करती है।

इस व्रत विधि में क्षेत्र, परिवार, जाति एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार थोड़ा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, मूल रूप वही है। आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व नवीन वस्त्र पहनने एवं श्रृंगार करने का प्रचलन नहीं था। कारण तब दिखावा नहीं था। व्रत विधि यही थी।

करवा चौथ की इस सम्पूर्ण पूजन विधि पर दृष्टिपात करने के पीछे हमारा दृष्टिकोण नारी स्वातन्त्रय की वर्तमान मांग, उसकी अस्मिता, शारीरिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता इत्यादि.....के संदर्भ में करवा चौथ के व्रत की समर्थकता एवं औचित्य पर गंभीरता से विचार करना है।

मोटे रूप में देखने पर यह व्रत नारी की अस्मिता पर प्रश्न-चिह्न लगता है, परन्तु जब हम गहराई से चिन्तन मनन करते हैं तो हमें यहाँ भारतीय जीवन-दर्शन की पावन स्त्रोतस्विनी प्रवाहित होती नजर आती है। एक विकल्प हीन आस्था जिसके स्वरूप को ''अज्ञेय'' की ''शाश्वती'' में कहे गए इन शब्दों से वाणी दी जा सकती है - ''आप सिद्ध कर दीजिए कि कृष्ण कभी हुए ही नहीं तो भी श्रद्धालु हिन्दू को कोई विशेष चिन्ता नहीं होगी।'' यहाँ पत्नी की स्थिति श्रद्धालु हिन्दू की ही है जिसे पता है हमारी संस्कृति का आधार स्तम्भ ''अर्द्धनारीश्वर'' है अर्थात् परिवार में स्त्री-पुरूष का समुचित संतुलन ही शिव को, कल्याण को देने वाला है, समाज एवं संस्कृति की नींव है। उसके लिए विवाह बंधन जबरन थोपी गई स्थिति नहीं है। वर माला की रस्म द्वारा पहले स्त्री अपने साथी का वरण करती है, जीवनभर उसके साथ रहने की प्रतिज्ञा करती है और उसे निभाती भी है। ''यूज एण्ड थ्रो'' की तलाक वाली बात उसके चिन्तन में नहीं होती। **कोई इंसान पूर्ण नहीं होता, जिसका चयन कर लिया उसे अपने अनुकूलन बनाने और उसके अनुकूलन बनने की उसकी चाह का प्रतीक है** - ''यह करवा चौथ का व्रत''। पारिवारिक जिम्मेदारियों में पति-पत्नी परस्पर दायित्वों का निर्वाह करना न भूल जाएँ, उनके मध्य प्रवाहित रसधारा की सरस अभिव्यक्ति है - ''करवा चौथ''। पति के स्वस्थ जीवन एवं लम्बी उम्र की मंगल कामना के साथ निर्जला रहने के त्याग के हर कदम पर पति के प्यार, प्यार भरे विश्वास की छाँव उसका संबल होता है। पति का सम्पूर्ण ध्यान पत्नी की ओर और पत्नी का सम्पूर्ण ध्यान पति की ओर, सहसा याद हो आता है बिहारी का यह छनद - ''पिय में ध्यान गही-गही, रही वही ह्वै नारि। आपु आपु हीं आरसी लखि रींझति-रिझवारि।''

पत्नी पति की लम्बी उम्र की कामना करती है अर्थात् लम्बे समय तक उसके संग रहना चाहती है। आज इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में शिक्षित, आत्मनिर्भर, आत्मविश्वास से पूर्ण नारी जब इस कामना से यह व्रत रखती है तो यह प्रश्न स्वत: ही निरर्थक हो जात है कि ''यह व्रत नारी अस्मिता पर प्रश्न चिह्न है।''

वास्तविकता तो यह है कि वह दाम्पत्य जीवन को पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व के रूप में स्वीकार करती है। कर्त्तव्य पालन में छिपे अधिकारों को वह पहचानती है। वेदों में नारी को ब्रह्मा द्वारा दिए गए आदेश – ''राष्ट्र को केवल जन नहीं चाहिए वरन् दिव्य जन प्रदान करें।'' को यह स्वीकार करती है। ''दिव्य संतान'' की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं, पति–पत्नी में सामंजस्य की आवश्यकता है। परिवार, समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए समर्पित नारी अपने जीवन साथी के संग हर परिस्थिति का पूर्णशक्ति सामर्थ्य के साथ मुकाबला करने में ही जीवन की सार्थकता समझती है। पिता के घर से अनजाने घर में आई स्त्री पूर्णत: पति के रंग में रंग जाती है, पति की एवं उसके पूरे परिवार की खुशी एवं समृद्धि ही उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन जाती है जिसे अभिव्यक्ति देती है वह – ''करवा चौथ के व्रत'' के माध्यम से। सर्वत्र मर्यादित श्रृंगार के मध्य झिलमिलाती उसकी शारीरिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता यहाँ दिखलाई देती है। अनेक रिश्तों की डोर संबंधी, ''बहू'' बनकर परिवार में आई वह स्त्री सभी रिश्तों के संग पत्नी धर्म भी पूर्णत: निभाने को कटिबद्ध है। इसका प्रतीक है यह ''करवा चौथ''। तभी तो व्रत की पूजन विधि में वह अपने घर–परिवार एवं राष्ट्र की समृद्धि के लिए सर्वप्रथम स्वयं निर्जला रहकर सहनशक्ति के रूप में पृथ्वी का धर्म निभाती है, फिर अनादि शक्ति स्वरूपा चौथ माता एवं गणेश का पूजन करती हुई क्रमश: करवा एवं ज्वारे की पूजा करती है, लहलहाती फसल एवं तैयार भोजन की पूजा करती है, सूर्य व चन्द्र की पूजा करती है और उन्हीं के समान जीवन–साथी के प्रकाशमाना, यशस्वी होने की कामना करती है। प्रकृति का हर उपादान पूजनीय है उसके लिए, सबकी पूजा करके वह अपने लिए नहीं अपने प्राणों से भी प्रिय जीवनसाथी के लिए सब कुछ चाहती है। यह है समर्पण की पराकाष्ठा, अपने प्रिय में अपना पूर्ण विसर्जन, जिसके समक्ष उस आद्य शक्ति को भी झुकना ही पड़ता है। इस अद्भुत समर्पण के समक्ष तथाकथित स्वतंत्रता के प्रश्न स्वत: ही बेमानी हो जाती हैं।

पूजन विधि के अन्तिम दृश्य पर ध्यान दें तो नजारा कुछ ये होता है – चन्द्र पूजन कर चन्दा को चलनी में देख फिर उसी चलनी से अपने प्रिय को देखती हैं, हृदय में प्रेम–सागर हिलोल ले रहा है, पर मूक अभिव्यक्ति चलनी की ओर से चन्दा से प्यारे, चन्दा से मनमोहक प्रिय से मिलन, दिल से दिल की डोर जुड़ी होती है। यह स्त्रियोचित लज्जा उसके सौन्दर्य एवं तप में भी वृद्धि कर उसे परिवार की धुरी बना देती है। यहाँ न तो कोई शारीरिक स्वतंत्रता का प्रश्न खड़ा होता है, न आर्थिक या अन्य कोई। फिर करवा चौथ नारी स्वतंत्रता पर प्रश्न चिह्न कैसे हो सकता है।

वस्तुत: भावनात्मक रिश्तों को स्वतंत्रता के पैमाने से नापने वाले बुद्धिजीवियों को यहाँ निराशा ही हाथ लगेगी। अस्तु, करवा चौथ नारी की अस्मिता को स्थापित करता है, उस पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाता।

डॉ. साधना गुप्ता (सहायक आचार्य), राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़
मंगलपुरा, टेक, झालावाड़ – 3260001 (राज.) मो. – 9530350325

✧ ✧ ✧

स्वातंत्योत्तर कथाशिल्पी अमरकांत : एक नजर

सुलोचना कुमारी

अमरकांत अपने विषय के प्रति बिना किसी मोह और आसक्ति के प्रामाणिकतापूर्वक रचनात्मक न्याय करते हैं। वे अपनी आलोचनात्मक प्रखरता तथा रचनात्मक संवेदना और सहानुभूति के बीच एक अद्भुत संतुलन के साथ स्थितियों, समस्याओं, परिवेश और पात्रों का चित्रण करते हैं। अमरकांत की कहानियों में आए पात्रों-चरित्रों के वैविध्य पर ही सिर्फ दृष्टि रखी जाय तो लेखक के अनुभव, पर्यवेक्षण और चित्रण - सामर्थ्य पर विस्मित रह जाना पड़ता है।

साहित्य जगत के चिर यशस्वी, साधारण जन के असाधारण कथाकार अमरकांतजी नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख और प्रखर स्तम्भ हैं। अमरकांत एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसने स्नातक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत सरकारी नौकरी नहीं की और साहित्य-सेवा का संघर्षभरा मार्ग चुना। उनका यह चुनाव उनके संघर्षशील एवं राष्ट्रप्रेमिल व्यक्तित्व का प्रमाण है। वे स्वतंत्रता सेनानी भी थे। 1 जुलाई 1925 को उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला बलिया, तहसील रसड़ा, नगरा से सटा एक छोटा गाँव

(1 जुलाई 1925-17 फरवरी 2014)

(टोला) भगमलपुर में जन्मे मानवता की मूर्ति अमरकान्त पिता सीताराम वर्मा और माता अनंती देवी के ज्येष्ठ संतान थे। इस जीवट और जूझारू रचनाकार का उदय ही तब होता है जब देश में दूसरा विश्वयुद्ध, भारत छोड़ो आन्दोलन, बंगाल का अकाल, मजदूरों की देशव्यापी हड़तालें, देश विभाजन, सांप्रदायिक दंगे आदि घटनाएँ घट रही थीं। युग-सत्य को सामाजिक प्रयोजन की कसौटी पर रचने वाला क्रांतिकारी लेखक अमरकांत यथार्थवादी धारा के अद्वितीय रचनाकार हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के यथार्थ को जानने के लिए उनकी रचनाओं का अध्ययन

मील का पत्थर है ।

''अमरकांत का रचना संसार महान रचनाकारों के रचना संसार जैसा विश्वसनीय है। उस विश्वसनीयता का कारण है, स्थितियों का अचूक चित्रण, जिसमें व्यंग्य और मार्मिकता का जन्म होता है।''1 समाज के तत्कालीन व्यवस्था का संपूर्ण दृश्य उनके छोटे-छोटे कथा के द्वारा चित्रित होते जाते हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में तर्कहीन व्यवस्था से उत्पन्न विडम्बना और विसंगति का सामाजिक सन्दर्भों में बड़ी कुशलता से चित्रण मिलता है। सामाजिक विसंगतियों के प्रति उनका व्यंग्य बहुत ही तीखा होता है। उनके गहरे व्यंग्यों का आधार उनके संश्लिष्ट-सामाजिक अनुभव हैं। ''अमरकांत के बिना आज की नई कहानी की कोई भी चर्चा अधूरी है।''2

प्रसिद्ध कथाकार अमरकांत के पास आजादी के संघर्ष का भोगा इतिहास, सामाजिक जीवन का कटु अनुभव, मनोविज्ञान की पक्की जानकारी, अपनी धरती एवं मिट्टी की पहचान, भाव-जगत के साथ वस्तु-जगत की सूक्ष्म पकड़ आदि अनुभवों का एक अकूत भंडार था, जो अन्यत्र दुर्लभ है। अमरकांत इकलौता कथाशिल्पी हैं, जिन्होंने एक साथ क्लर्क, भिखारी, नौकर, बेकार, बेरोजगार, बाढ़, अकाल, भूख, बेकारी, लाचारी, भ्रष्टाचार, शोषण, छल-छद्म, सांप्रदायिकता, जातिवाद, हत्या, बलात्कार, छेड़छाड़, अशिक्षा, दोमुंहेपन, दिखावेपन, आर्थिक बेचारगी, बीमारी, अन्धविश्वास, भाग्यवाद, उदारता, प्रेम, घृणा आदि सभी विषयों पर अपनी तुलिका चलाई है। वे एक कालजयी कहानीकार हैं। उनका रचनासंसार विस्तृत और विश्वसनीय है। उन्होंने लगभग 133 कहानियाँ, 17 से अधिक कहानी संग्रह, 12 उपन्यास, 9 बाल साहित्य, प्रौढ़ साहित्य, 2 संस्मरण लिखे। उनका साहित्य प्रयोजनयुक्त है। उनकी अवधारणा स्पष्ट है। इस महान कहानीकार की कहानियाँ उनकी घनीभूत संवेदना, सूक्ष्म अनुभव, तीक्ष्ण अनुभूति, समर्पित रचनाधर्मिता, उत्दृष्ट सर्जनात्मक क्षमता, अद्भुत जीवटता कुशल अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक दस्तावेज है। उनकी कहानियों में चित्रित घटनाएँ यथार्थ की भाव भूमि से जुड़ी होती है, इसलिए पाठकों का विश्वास सहज ही उनपर जमता चला जाता है। जन साधारण की छोटी-छोटी जरूरतों, परेशानियों, मनोभावों आदि को गहरी सहानुभूति के साथ पाठक के सामने रखते हैं। उनसे शायद ही कोई समस्या छूट पाई है।

अमरकांत अपने विषय के प्रति बिना किसी मोह और आसक्ति के प्रामाणिकतापूर्वक रचनात्मक न्याय करते हैं। वे अपनी आलोचनात्मक प्रखरता तथा रचनात्मक संवेदना और सहानुभूति के बीच एक अद्भुत संतुलन के साथ स्थितियों, समस्याओं, परिवेश और पात्रों का चित्रण करते हैं। अमरकांत की कहानियों में आए पात्रों-चरित्रों के वैविध्य पर ही सिर्फ दृष्टि रखी जाय तो लेखक के अनुभव, पर्यवेक्षण और चित्रण-सामर्थ्य पर विस्मित रह जाना पड़ता है। अपनी बात व्यक्ति से शुरू कर व्यवस्था तक पहुँचने के क्रम में उन तमाम सामाजिक विसंगतियों और परिवेश के अंतर्विरोधों से गुजरते हुए वे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और कहानी जीवंत हो उठती है। कथ्य को लाने के पूर्व वातावरण का समायोजन इस तरह करते हैं कि पाठक में आगे की

बात जानने की उत्सुकता बढ़ जाती है।

कुशल मनोविज्ञानी अमरकांतजी को टुच्चे, दुष्ट और कमीने लोगों की तर्क पद्धति, उनकी मानसिकता और व्यवहार की गहरी समझ थी। छोटे और मझोले शहरों में जीवन-यापन के लिए सदा संघर्षरत निम्नमध्यवर्ग के वे अत्यंत प्रमुख चितेरे और पारखी कथाकार हैं। इस वर्ग के निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को उसके अन्तरंग और बहिरंग ताने-बाने के साथ अपनी कहानियों में अँकित करते हैं। उनके पात्र जीने के लिए नए-नए तरीके ढूंढते रहते हैं। उनकी जिजीविषा और संघर्ष अद्‌भुत है। उनकी कहानियों में ऊँचे-नीचे, बड़े-छोटे कहलाने वाले मनुष्य मात्र का मनोविज्ञान स्पष्टरूपेण चित्रित है।

''उनकी शैली जितनी सीधी, सरल और निर्व्याज है, जितनी शिल्पहीन सादगी है, उतनी ही गहरी अंतर्दृष्टि और तरल मानवीय संवेदना भी।''3 महान आलोचक डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में ''अमरकांत की कहानियों में नवीन आर्थिक परिस्थितियों का सामना करने वाले निम्न मध्यवर्गीय व्यक्तियों की लाचारी, पीड़ा, आत्मप्रवंचना और जिजीविषा आदि मन: स्थितियों का कलापूर्ण मार्मिक चित्रण मिलता है।'' 4 अन्य कहानीकारों ने जहाँ व्यक्ति को उसके अकेलेपन में देखा, अमरकांत ने व्यक्ति को समाज से जोड़कर देखा। शिल्प उनकी सहज अभिव्यक्ति का हिस्सा है। अभिव्यक्ति में उनका अद्‌भुत संयम है। उनकी भाषा उनके श्रम, साधना और स्वभाव के अनुसार अति विशिष्ट, सहज और सरल है और सामाजिक सरोकारों से संपृक्त है। वह जीवंतता, प्रवाहशीलता, सम्प्रेषणशीलता, बोधगम्यता आदि गुणों से संपन्न है। उनकी रचनाओं का व्यंग्य तिलमिलाहट लाने में समर्थ है। व्यंग्य को वे हथियार की तरह प्रयोग करते हैं और उसकी मार को दवा की तरह। उनकी मार रूपी दवा रोगों से मुक्त कराने में अचूक ठहरती है। ''जीवन की भूख का जैसा मर्मस्पर्शी चित्रण अमरकांत ने किया है, वह हिन्दी-कहानी की विकासशील मूल जातीय परंपरा की अगली कड़ी है।''5 नई कहानी आंदोलन के अभिविश्रुत आदि शिल्पी और छटपटाते पात्रों के कथाकार अमरकांत नई कहानी आन्दोलन से पहले भी लिख रहे थे, आन्दोलन के साथ भी लिख रहे थे और जीवन पर्यंत लिखते रहे। उनके ही शब्दों में :

''मैं 50 के दशक का लेखक हूँ। नई कहानी आन्दोलन से कोई प्रभावित होता है, यह तो बाद में नाम दिया गया। बहुत कम लोग आन्दोलन से प्रभावित होकर लिखते हैं। सभी अपने अनुभव से, अपनी बाध्यताओं से, जीवन से लिखते हैं। समाज में कितनी यंत्रणा और दु:ख है, कितना शोषण है, कितना उत्पीड़न है। सब मुझे प्रेरित करता है - लिखने के लिए, कुछ ऐसा रूप देने के लिए कि जिससे लोगों पर प्रभाव पड़े।'' 6 उनकी पहली कहानी 'बाबू' 1949 ई. में 'सैनिक' पत्रिका में छपी थी। लेकिन उनके लेखक-रूप को सबके सामने लाने में 'इंटरव्यू' (1952 ई. में प्रकाशित) कहानी का नाम लिया जाता है, जो आज भी प्रासंगिक है। इसे उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की सभा में सुनाई थी। यह कहानी वरिष्ठ आलोचक रामविलास शर्मा के द्वारा आलोचित एवं प्रशंसित हुई थी। शेखर जोशी के शब्दों में :

''याद आता है, अमरकांत का कथन कि आगरा प्रवास के दिनों में वह जब काली अचकन पहन कर पत्रकार विश्वनाथ भटेले के साथ प्रगतिशील लेखक मंच की बैठक में जाते थे, तो एकाध बार गजल सुना देने पर लोग उन्हें कोई साहित्य प्रेमी टेलर मास्टर किस्म का आदमी समझते थे और हर बार मीटिंग की समाप्ति पर उनसे गाना सुनाने का आग्रह किया जाता । एक दिन जब उन्होंने स्वरचित कहानी पाठ का प्रस्ताव रखा और 'इंटरव्यू' कहानी सुनाई तो उनका कहानीकार व्यक्तित्व उद्घाटित हुआ।''7 उनकी रचनात्मक क्षमता में क्रमशः प्रवीणता और प्रौढता आती गयीं एवं साहित्य-जगत में उनकी एक विशिष्ट पहचान बन गयी। एक बार जो उनकी लेखनी चल पड़ी तो फिर जीवन पर्यंत चलती ही रही। जीवन की बाधाएँ उन्हें रोक नहीं सकीं। उन्होंने एक-से बढ़कर-एक कई बेहतरीन कहानियाँ लिख डाली। 'इन्टरव्यू', 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी', 'हत्यारे', 'जिंदगी और जोंक', 'बहादुर', 'फर्क', 'कबड्डी', 'मूस', 'छिपकली', 'मौत का नगर', 'पलास के फूल', 'बउरैया कोदो' आदि उनकी बेहतरीन और कालजयी कहानियाँ

अत्यंत संवेदनशील, चिंतनशील और क्रांतिकारी व्यक्तित्व वाले महामानव अमरकांत के चिंतन के दायरे में समाज की सारी जटिलताएँ, विषमताएँ, विडंबनाएँ तथा अंतर्विरोध हैं जीवंत हो उठते हैं, जिनका प्रभाव उनकी कहानियों में स्पष्ट है। उन्होंने आर्थिक विषमता, अंधविश्वास, रूढ़ियों आदि को जनता की पीड़ा का कारण माना है। क्रांन्तिकारी लेखक अमरकांत कहते हैं कि 'समाज में जो व्यवस्था है, उसे मिटा देने की आकांक्षा और प्रेरणा हर आदमी में है। कोई यदि जीवन का चित्रण करता है तो इसका मतलब है कि वह जीवन वह बदलना चाहता है। वह ऐसा समाज रचना चाहता है, जिसमें समता हो, सबको मनुष्य की तरह जीने का अधिकार हो। देश में प्रगतिशील जनतंत्र नहीं होने से वह कमजोर पड़ता जाता है।

हैं। उनकी कहानियों में भारतीयता कूट-कूट कर भरी है, जिससे वे पाठकों को अपनापन का एहसास दिलाती हैं। मध्यवर्ग के शिक्षित और जागरूक पीढ़ी के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण रचनाकार अमरकांत की रचनाएँ भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मन, रसियन, हंगेरियन, जैपेनीज आदि विश्व भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में उनकी रचना शामिल हैं। 'पेंग्विन इण्डिया' के माध्यम से अंग्रेजी में प्रकाशित दो कहानी संग्रहों में उनकी कहानियाँ शामिल की गयी हैं। उनकी कुछ कहानियों का प्रदर्शन दूरदर्शन के द्वारा भी किया जा चुका है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली, गढ़वाल, कुमांयू, गोरखपुर, इलाहबाद और आगरा के कई संस्थाओं द्वारा अमरकांत की कहानियों का सफल मंचन हुआ है। देशभर की हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनका साहित्य छपता रहा है। इस भारतीय कथाकार को 'महात्मा

गाँधी' सम्मान, सोवियतलैंड नेहरू' पुरस्कार, 'मैथिलीशरण गुप्त' पुरस्कार, 'यशपाल' पुरस्कार, 'जन-संस्कृति' सम्मान, 'अमर कीर्ति' सम्मान, 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार, 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार, 'व्यास' सम्मान आदि से सम्मानित किया गया है । महान व्यक्तित्व अमरकांत मानवीय मूल्यों के कथाकार हैं। मानवीय मूल्यों में भी जिजीविषा उनकी वाणी है, जो मानवीय और वैयक्तिक दोनों ही स्तरों पर है। मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा उनकी कहानियों में स्पष्ट है। वे प्रगतिशील जीवन दर्शन के समर्थक हैं। उनका कहना है कि मनुष्य के बाहरी और भीतरी संघर्ष को समझकर ही प्रगतिशील दृष्टिकोण विकसित होता है। ''मनुष्य की अटूट जीजिविषा उसके खूबसूरत विचार, उसकी उदात्त भावनाओं, बुराई, घृणा, हिंसा के विरुद्ध उसके संघर्ष तथा प्रेम, शक्ति एवं एकता के लिए किए जाने वाले उसके प्रयासों से ही यह जीवन इतना सुन्दर है और ऐसे ही यह जीवन को उनके नाना रंग में अभिव्यक्त करना साहित्य का उद्देश्य है।''8

अमरकांत एक महान युग द्रष्टा थे। उनकी वे प्रारंभिक कहानियाँ जो छठे दशक में 'नई कहानी' की शैशवावस्था में लिखी गयी थीं, आज भी अपने संदर्भ विशेष में सार्थक और जीवंत हैं। उन्होंने युग के भविष्य को 66 वर्ष पूर्व ही पहचान लिया था। अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने साहित्यिक दृष्टिकोणों का अक्षरशः पालन किया है। उनकी रचना ही बोल उठती है कि वे किस तरह ईमानदार, कर्मनिष्ठ, लगनशील, सरल, सहज, अनुशासनप्रिय आदि थे।

अत्यंत संवेदनशील, चिंतनशील और क्रांतिकारी व्यक्तित्व वाले महामानव अमरकांत के चिंतन के दायरे में समाज की सारी जटिलताएँ, विषमताएँ, विडंबनाएँ तथा अंतर्विरोध हैं, जिनका प्रभाव उनकी कहानियों में स्पष्ट है। उन्होंने आर्थिक विषमता, अंधविश्वास, रूढ़ियों आदि को जनता की पीड़ा का कारण माना है। क्रांन्तिकारी लेखक अमरकांत कहते हैं कि 'समाज में जो व्यवस्था है, उसे मिटा देने की आकांक्षा और प्रेरणा हर आदमी में है। कोई यदि जीवन का चित्रण करता है तो इसका मतलब है कि वह जीवन को वह बदलना चाहता है। वह ऐसा समाज रचना चाहता है, जिसमें समता हो, सबको मनुष्य की तरह जीने का अधिकार हो। देश में प्रगतिशील जनतंत्र नहीं होने से वह कमजोर पड़ता जाता है। देश की मौजूदा व्यवस्था जनता को संतुष्ट नहीं कर पा रही है। ऐसे में सशक्त लोकपाल की नियुक्ति अनिवार्य है।' इस युग दृष्टा का यह सपना आज साकार होता दिख रहा है। 'नई कहानी आन्दोलन' के मूर्धन्य कहानीकार अमरकांत का व्यक्तित्व अनुभवसिद्ध व्यक्ति का व्यावहारिक संगठन है। उनमें आत्मविश्वास, आत्माभिमान, आत्मनिर्णय और राष्ट्रप्रेम का उत्कट उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। मानवतावादी मूल्यों के रक्षक इस महामानव की दृष्टि में सामाजिक न्याय और समानता के मूल्य का स्थान सर्वोपरि है। यही उनके साहित्य की आत्मा भी है। वे वास्तव में एक रचनाकार थे, रचनाधर्मिता ही उनके प्राण थे। उन्होंने समय और समाज को एक नई दिशा दी, उन्हें संहारक नहीं विचारक बनाया। एक सामान्य मध्यमवर्ग का जीवन जीते हुए अमरकांत जी का स्वतंत्र लेखन जीवन पर्यंत जारी रहा। निंदा और प्रसिद्धि से दूर ''उनकी कलम न रूकी, न झुकी। उनके साथ के कई रचनाकार थक-चुक कर बैठ गए, कुछ निजी पत्रकारिता में चले गए तो कुछ मौन हो गए, किन्तु अमरकांत ने अपनी निजी

परेशानियों को कभी लेखन पर हावी नहीं होने दिया।''9 वे नाटक भी लिखना चाहते थे। 'सैनिक' (दैनिक), 'अमृत' (दैनिक), 'भारत' (दैनिक), 'कहानी' (मासिक), 'मनोरमा' (पाक्षिक) पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी उन्होंने किया। 'बहाव' नामक अपनी स्वतन्त्र पत्रिका के वे संपादक थे। अमर शिल्पी अमरकांतजी का रचनाकाल 1952 ई. से फरवरी 2014 तक का है। आधी शताब्दी से अधिक का उनका रचनात्मक स्फर अत्यंत श्रेष्ठ एवं उन्नत है। उन्होंने 62 वर्ष तक साहित्य के बहाने देश की भरपूर सेवा की है। वे एक युग प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित होने के सामर्थ्य से युक्त हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानी की समीक्षा के लिए उनकी कहानियाँ एक मजबूत मानदंड स्थापित करती हैं। लेखक की सफलता इस बात में होती है कि वह अपने तरफ से कोई आदर्श न थोपकर स्थितियों का समायोजन इस तरह करे कि रचना स्वयं अपने आदर्श को प्रकट करें, इस दृष्टि से अमरकांत अद्वितीय रचनाकार ठहरते हैं । उम्र के कई पड़ावों को पार करने वाले वरिष्ठ कथाकार, जुझारू संपादक अमरकांतजी ने किसी युवा रचनाकार से अधिक सृजन किया है, क्योंकि वे अमर कांत थे। उनकी रचनावृक्षों से साहित्य-धरती फल-फूल रही है। इस युग प्रवर्तक साहित्यकार की अपनी विश्व दृष्टि थी, जो उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। साहित्य के उद्देश्य से तनिक भी हट जाना, उन्हें बिल्कुल ही पसंद नहीं था। भारत के 'मैक्सिम गोर्की, आमजीवन के महान रचनाकार 17 फरवरी 2014 को सदा के लिए हमसे विदा हो गये। उनका जाना साहित्य, कला, संस्कृति के लिए अपूरणीय क्षति है। उनके पदचिन्हों पर चलते हुए रचना, रचना-धर्म और मानवीय संवेदनाओं को जीवित रखना ही उनकी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. वर्ष दृ 1, सं० दृ रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया एवं नरेश सक्सेना, इलाहबाद, पेज न० दृ 127 संस्करण दृ 1977, 2. नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० दृ देवीशंकर अवस्थी, पेज न० दृ 195, संस्करण दृ 2013, 3. नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० दृ देवीशंकर अवस्थी, पेज न० दृ 196, संस्करण दृ 2013, 4. कहानी : नई कहानी, नामवर सिंह, पेज न० दृ 48, लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण दृ 2014, 5. नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० दृ देवीशंकर अवस्थी, पेज न० दृ 196, संस्करण दृ 2013, 6. वागर्थ पत्रिका, अगस्त, 2012, 7. अनहद, इंटरनेट पत्रिका, फरवरी, 2017, 8. कुछ यादें कुछ बातें, अमरकांत, पेज न० दृ 117, संस्मरण दृ 2005, राजकमल प्रकाशन, 9. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग दृ 1, पेज न० दृ 5 सं० दृ रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दृ 2013

सुलोचना कुमारी, शोधार्थी
पटना विश्वविद्यालय, पटना

'दस्तावेज' के अंतर्गत हम कीर्तिशेष पत्रिकाओं से कालजयी रचनाओं का पुर्न प्रकाशन करते हैं। उद्देश्य यह है कि आज की पीढ़ी उन रचना, रचनाकारों और उनके चिंतन से रू-ब-रू हो सकें।

इस स्तंभ के अंतर्गत प्रस्तुत है। 'अवंतिका' के फरवरी 1954 अंक में प्रकाशित राम अवध द्विवेदी का आलेख 'काव्य में सत्य की अभिव्यक्ति।'

काव्य में सत्य की अभिव्यक्ति

डॉ. रामअवध द्विवेदी

व्यावहारिक जीवन में सत्य के लिए मानसिक स्वीकृति नितांत आवश्यक है। यह पदार्थ, घटना अथवा कथन की एक ऐसी विशेषता है जिसे मन पहचानता तथा ग्रहण करता है। कुछ सत्य इतने स्पष्ट और स्वयं-सिद्ध होते हैं कि उनके संबंध में हम कह सकते हैं कि वे अपने-आपको प्रतिक्षण घोषित करते रहते हैं। अतएव वे सर्वग्राह्य होते है और उनके संबंध में मतभेद की संभावना नहीं रहती। एक अन्य कोटि का सत्य मुख्यतः अगोचर रहता है और उसको हम अनुमान तथा प्रमाण द्वारा प्राप्त करते हैं।

जिस भाँति हम अगोचर पर सत्ता की कल्पना सत् चित् तथा आनंद के सहारे करते हैं, प्रायः उसी भाँति कला के सौंदर्य को हम सत्यं, शिवं, सुंदरम् के रूप में ग्रहण करने का प्रयास करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार सत्यं, शिवं, सुंदरम् का आदर्श अभारतीय है। जो कुछ भी हो, यह आदर्श मान्य हो गया है और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही उनकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती रही है। विक्टर कजिन्स ने अपने लेखों तथा भाषणों में इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया, और उसके उपरांत इसे लोग एक स्थिर विश्वास के रूप में प्राच्य और पाश्चात्य देशों में मानने लगे। सत्यं, शिवं और सुंदरम् के पहले आता है, इसलिए उसका महत्व इन दोनों से अधिक है। सत्य के अभाव में कला की मंगलदायिनी शक्ति क्षीण और उसका सौंदर्य मलिन हो जाता है। सुंदर और असुंदर के भेद पर बहुत विचार हुआ है। कुछ लोग ऐसे भी मिलते हैं जिन्होंने असुंदर की ही हिमायत की है। विक्टर ह्यूगो ने लिखा है कि सुंदर में एकरूपता होती है, किंतु असुंदर हमें अपनी अनेकरूपता से आकृष्ट करता है। पर हमें ऐसे लोग नहीं मिलते जिन्होंने कला में

सत्य को छोड़कर असत्य का समर्थन किया हो। जीवन और कला में सत्य का आधिपत्य इतना विस्तृत और सुदृढ़ रूप से व्यवस्थित है कि यदि कोई असत्य का समर्थन करना भी चाहे तो लोक उसे क्षमा न करेंगे। यह एक सर्व-स्वीकृत धारणा है कि कला का जीवन सत्य से अनुप्राणित होता है।

कला और जीवन में सत्य का अस्तित्व हम सरलता से स्वीकार कर लेते है, किंतु कठिनाई तब प्रारंभ होती है जब हम सत्य के स्वरूप को समझने का प्रयास करते हैं। कहा जाता है कि गृढ़ तत्व गहराई में छिपे रहते है तथा अनवरत परिश्रम के बाद ही उपलब्ध होते है। अतः सत्य की खोज अनादिकाल से चली आई है और कदाचित् भविष्य में भी चलती रहेगी, क्योंक अभी तक पूर्ण सफलता प्राप्त होने के कोई लक्ष्ण नहीं दिखाई देते हैं। वाइविल में कथा है कि किसी ने प्रभु ईसामसीह से पूछा कि सत्य क्या है और उतर की प्रतीज्ञा न करने प्रश्नकर्ता व्यंग्य की हँसी हँसता हुआ चला गया। पादरी लोग कहते है कि यदि वह मसखरा रूकता तो उसे उतर अवश्य मिलता, किंतु उसकी व्यंग्यपूर्ण हँसी का अभिप्राय कदाचित यह था कि उसका प्रश्न कठिन था और उसके उतर मिलने की संभावना नहीं थी। जो कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि धर्म, दर्शन और विज्ञान- सभी सत्य के मसले को हल करने में युगों से संलग्न रहे है। किंतु सत्य के स्वभाव के संबंध में अंतिम निर्णय और पूर्ण मतैक्य संभव नहीं हो सका है। काव्य के सत्य के वास्तविक स्वरूप के संबंध में तो और भी अधिक मतभेद है और अनेक विचारकों ने अपनी मति और रूचि के अनुसार अलग-अलग उसका विवेचन किया है।

व्यावहारिक जीवन में सत्य के लिए मानसिक स्वीकृति नितांत आवश्यक है। यह पदार्थ, घटना अथवा कथन की एक ऐसी विशेषता है जिसे मन पहचानता तथा ग्रहण करता है। कुछ सत्य इतने स्पष्ट और स्वयं-सिद्ध होते है कि उनके संबंध में हम कह सकते है कि वे अपने-आपको प्रतिक्षण घोषित करते रहते है। अतएव वे सर्वग्राह्य होते है और उनके संबंध में मतभेद की संभावना नहीं रहती। एक अन्य कोटि का सत्य मुख्यतः अगोचर रहता है और उसको हम अनुमान तथा प्रमाण द्वारा प्राप्त करते है। सम्यक् प्रमाण मिल जाने पर हमारे मन का परितोप हो जाता है। इस संबंध में सबसे सीधा और सरल प्रमाण यथार्थ से तुलना करने पर मिलता है। किसी कथन को हम जब यथार्थ के अनुरूप पाते है तब उसे बिना किसी संकोच के सत्य समझ लेते है। इसी भाँति हम किसी घटना अथवा कथन को अपने संचित अनुभव के मानदंड से भी आँकते है। जिस बात को हमारा अनुभव सही बताता है उसी को हम सत्य मानते है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यदि कोई बात केवल हमारे अनुभव के ही अनुकूल है तो वह हमारा वैयक्तिक सत्य ही वन सकती है। सामान्य सत्य वह तभी बन सकेगी जब वह साधारण रूप से सभी के अनुभव से प्रमाणित होगी। इस भाँति सत्य की धारणा केवल किसी व्यक्ति विशेष के विचार और अनुभव पर अवलंबित नहीं, वरन् सामान्य मानसिक स्वीकृति पर निर्भर होती है। कभी-कभी सत्य को हम तर्क द्वारा प्राप्त करते है। दार्शनिक सूक्ष्म और जटिल तर्क की सहायता से विरोधी तत्वों को काटते और समान तत्वों की संगति द्वारा निष्कर्ष निकालते है। उनके मतानुसार सत्य वही है जो तर्क की तुला पर ठीक उतरे और

जो विरोधी प्रमाणों द्वारा काट न जा सके। कुछ लोग यह भी मानते है कि सत्य में तारतम्य होता है अर्थात् बातों की संगति ठीक-ठीक बैठती चलती है। ऐसा विश्वास है कि झूठ के पाँच नहीं होते और उसकी बुनियाद पर खड़ी इमारत बड़ी ही कमजोर होती है। इसी सिद्वांत के सहारे न्यायालयों में सत्य की खोज होती है। जिस पक्ष का प्रमाण ऐसा होता है कि उसमें चूर-में चूर बैठता चलता है, वही जीतता है। विज्ञान जगत् में सत्य वही है जो प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सके। किसी वैज्ञानिक की नई स्थापना अन्य विचारक तभी सवीकार करेंगे जब वे प्रयोगशाला में उसकी जाँच अनेक बार कर लेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसी प्रकार सभी बातों की जाँच हम प्रयोगशाला में नहीं कर सकते। मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक अवस्थाओं की जाँच के लिए जिन प्रयोगों का विधान किया है उनमें से बहुत से केवल खिलवाड़ मालूम पड़ते है। मन की गहराई में स्थित आशाओं और आकांक्षाओं की नाप उनसे हो सकेगी-यह अत्यंत संदिग्ध है। दैनिक जीवन में सत्य निष्पक्षता और ईमानदारी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। विभिन्न मतों के अनुयायी उन्हीं बातों ाके सत्य मानते है जो उनके सामुदायिक विश्वासों के अनुकूल है, शेष सब-कुछ उनके लिए झूठा है। इसी न्याय से आदर्शवादियों के लिए यथार्थवादियों का सत्य और समाजवादियों के लिए सौंदर्यवादियों का सत्य गहित सिद्ध होता है। सत्य के इस विभाजन के फलस्वरूप कट्टरता और विवाद का आभिर्भाव है। अभिप्राय यह है कि इस सत्य के जानने और पहचानने के अनके साधन है तथा इन साधनों के वैविध्य के साथ-ही-साथ सत्य के स्वभाव के संबंध में भी मतभेद प्रगट होता है। यद्यपि व्यावहारिक जीवन में पग-पग पर हम सत्य और असत्य का भेद करते चलते है।

काव्य और सत्य के परस्पर संबंध के विषय में विचार करने पर सर्वप्रथम यह प्रश्न सामने आता है कि काव्य में प्रमुख तत्व क्या है-सत्य अथवा मूल्य? मूल्य का अर्थ है वह सौंदर्य अथवा वैशिष्टय जो हमें आकृष्ट करता और आनंद प्रदान करता है। विशुद्ध सत्य का विषय है गणित, क्योंकि गणित के प्रतीकों के साथ किसी प्रकार के मानसिक राग अथवा चेष्टा का लगाव नहीं रहता। यथार्थ अनुभव से अलग रहकर गणित के अंक अपने ही निजी संबंध द्वारा निष्कर्ष प्रदान करते हैं। निस्संदेह ऐसे सत्य से साहित्य का तादात्म्य नहीं है। तर्क और विज्ञान भी भाव और चेष्टा को अलग रखकर अपना कार्य करना चाहते है और उनकी सफलता बहुत-कुछ उनकी विशुद्वबौद्धिकता द्वारा ही निर्धारित होती है। यद्यपि वैयक्तिक अभिरूचि और भावना का वे पूर्ण परित्याग नहीं कर सकते तथापि दर्शन और विज्ञान में बौद्धिकता का प्रचुर बाहुल्य रहता है। काव्य के क्षेत्र में कोरे बुद्धिवाद अथवा बुद्धि की बहुलता के लिए स्थान नहीं रहता। अत: सत्य का वह स्वरूप जो केवल बुद्धिगम्य है, काव्य का सत्य नहीं हो सकता। फलत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि काव्य में वास्तविक विरोध सत्य और असत्य का नहीं, वरन् मूल्य और मूल्य के अभाव का है। कुछ ऐसे समीक्षक है जो काव्य में प्रयुक्त तथ्यों को गलत सिद्ध करके किसी काव्य की कड़ी आलोचना करते है। शेक्सपियर ने अपने एक नाटक में बोहेमिया को समुद्र के तट पर स्थित कर दिया है जो यथार्थ के विपरीत है। इसी भाँति उनके अन्य नाटकों में वेनिस या रोम की प्राचीन घटनाओं के निरूपण में सोलहवीं शताब्दी के अँगरेजी जीवन की झलक मिलती है। इसको कुछ

लेखकों ने शेक्सपियर के अज्ञान का प्रमाण माना है; किंतु काव्य की दृष्टि से इस प्रकार की त्रुटियाँ सरलतापूर्वक भुलाई जा सकती है। वास्तविक महत्व की बात यह है कि कवि ने अपनी अभिव्यक्ति द्वारा हमारे मन में विश्वास उत्पन्न किया है अथवा नहीं? अरस्तू का प्रसिद्ध कथन है कि असंभव घटनाओं को यदि कवि संभाव्य बना देता है तो काव्य में वे उन तथ्यों से अधिक वांछनीय है जो यथार्थ होते हुए भी विश्वास से परे मालूम पड़ती है।

काव्य अपना प्रभाव केवल सत्य के निरूपण द्वारा नहीं उत्पन्न करता। यह कार्य तो तर्क, दर्शन, विज्ञान इत्यादि का है। काव्य का मूल्य अन्य साधनों की सहायता से निर्मित होता है। वे अन्य साधन कौन से है-इस संबंध में विद्वानों में काफी मतभेद है। विद्वानों का एक समुदाय मूल्य की स्थिति कला के पदार्थ में मानता है और दूसरा सहृदय के मन में। यह तो यह है कि दोनों ही विचार एकांगी है। यदि मूल्य केवल पदार्थ का गुणा है तो हमारा मन उसके प्रभावित क्यों होता है, यदि हम उसे केवल मानसिक व्यापार मान लें तो प्रश्न यह उठता है कि एक ही वस्तु अनेक जनों को सुंदर क्यों लगती है। वास्तव में मूल्य के ग्रहण करने के लिए बाह्य और आंतरिक उपकरणों का योग आवश्यक होता है। अत: क्रोचे का यह कहना कि काव्य की अभिव्यंजना कोरी मानसिक क्रिया है-बहुत संतोषप्रद प्रतीत नहीं होता। काव्य में बाह्य जगत् की सूचना तथा भाव और चेष्टा मिलकर रोचकता उत्पन्न करती है। बौद्धिक तत्वों से भी अधिक महत्व भाव, चेष्टा, संकेत इत्यादि का होता है। काव्य में आंतरिक प्रेरणा का मूल्य बाह्य सूचना में कही अधिक है। अत: काव्य का सत्य बहुत अंश में रागात्मक होता है। अत: काव्य का सत्य बहुत अंश में रागात्मक होता है। आंतरिक और बाह्य के समुचित समन्वय द्वारा की कला का मूल्य निर्धारण होता है। इसी को दर्शन में Subject-Object-Relationship अर्थात् मानसिक क्रियाओं और वाह्य पदार्थो का पारस्परिक संबंध कहते है। यद्यपि कला में विश्वासों और मूल्यों का ही निरूपण प्रधानत: मिलता है तथापि उनमें यथार्थ का अंश सदा निहित रहता है। यथार्थ अथवा सत्य के अभाव में सुंदरता अपूर्ण रह जाती है। इसीलिए कवि कीट्स की प्रसिद्ध उक्ति में सत्य और सौंदर्य का पूर्ण एकीकरण किया गया है। आदर्श पूर्णता की कल्पना सत्य और सौंदर्य के परिणाम द्वारा ही संभव हो सकती है। काव्य न तो केवल भावनाओं का प्रकाशन है और न विशुद्ध सत्य का प्रतिपादन। सत्य का अंश लेकर रागात्मक प्रवृतियों के आधार पर साहित्य अपना कार्य संपादित करता है। काल्डवेल ने बताया है कि काव्य गणित और संगीत के बीच में स्थित है तथा दोनों को एक सूत्र में बाँधता है। संगीत पूर्णरूपेण रागात्मक और गणित पूरी तरह बौद्धिक होता है। काव्य दोनों की विशेषताओं के मेल द्वारा समन्वय उपस्थित करता है। अँगरेजी के कवि विलियम वाट्सन ने इसी अवस्था की अत्यंत सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। उसका कथन है कि कविता न सत्य है , न शान, वह सत्य के अधरों की लालिमा और ज्ञान के नयनों की ज्योंति है।

जीवन के यथार्थ और काव्य के सत्य में परस्पर क्या संबंध है-यह एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस संबंध में सबसे सरल व्याख्या दोनों की एकरूपता बताकर की जाती है। प्लेटो ने कविता को हेय सिद्ध करेन के लिए उसका कार्य यथार्थ को प्रतिबिंवित करना मात्र बताया है।

उसके उपरांत अनेक रूपों में बार-बार यही सम्मति दोहराई गई है। शेक्सपियर के इस कथन से कि नाटक समाज का दर्पण है। इस विचार-परंपरा को बहुत सहारा मिला है। फोटो के केमरा के निर्माण के साथ ही साथ जोला ने अपने उपन्यासों में यथार्थ के नग्न चित्रण की शैली अपनाई और उसके अनुयायी स्टेंटल ने उपन्यास की तुलना एक प्रशस्त राजमार्ग पर चलामान विशाल दर्पण से की है जो प्रतिक्षण नवीन प्रतिविंब ग्रहण करता रहता है। साम्यवादी उपन्यासकार और आलोचक हावर्ड फास्ट की धारणा है कि साहित्य का चरम ध्येय यथार्थ का यथातथ्य (Precise) अंकन है। इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए काल्डवेल महोदय ने कहा है कि दर्पण प्रतिबिंबित करता है, किंतु अचेतन रूप से ही। काव्य में तथ्यों का निरूपण ज्ञान और अभिरूचि के साथ किया जाता है, अत: निर्जीव दर्पण में पदार्थों की छाया ग्रहण करनेवाला रूपक असंगत है। भारतीय साहित्य-शास्त्र में भी काव्य को यथार्थ का प्रतिबिंबमात्र माना गया है। अतएव इस धारणा का प्लेटो के मत से कुछ अंश में साम्य दिखाई पड़ता है। भारतीय साहित्य-शास्त्रियों ने दर्शन की भाँति ही काव्य का चरम ध्येय शक्ति की सिद्धि ही स्वीकार किया है। अंतर केवल मार्ग और साधन का है। दर्शन तर्क और बुद्धि के सहारे जिस उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहता है, काव्य उसी तक भाव, अनुभाव इत्यादि के सहारे पहुँचने का प्रयत्न करता है; पर भारतीय विचारकों ने काव्य के संबंध में सत्य के वास्तविक स्वरूप और स्वभाव का विवेचन नहीं किया है। अत: काव्य के अतिरिक्त काव्य-सत्य भी कोई

जीवन और काव्य का घना संबंध होते हुए भी दोनों में सत्य की कल्पना बहुत-कुछ भिन्न प्रकार से होती है। काव्य में सत्य से अभिप्राय केवल तथ्य-यथार्थ अथवा बुद्धिगम्य उपकरणों से नहीं है। काव्य का सत्य तो संश्लेषण द्वारा संगठित होता है। उसमें बुद्धिभाव, विश्वास, संकेत इत्यादि का समुचित समन्वय रहता है और उनके सहयोग से ही हमारे मन में विश्वास उत्पन्न होता है।

वस्तु है-इस मसले की ओर हमारे आचार्यो का ध्यान नहीं गया।

प्लोटो के प्रमुख शिष्य अरस्तू ने काव्य को जीवन का अनुकरण तो माना, किंतु अनुकरण से क्या अभिप्राय है- इस संबंध में बिलकुल नवीन व्याख्या उपस्थित की। अरस्तू के मतानुसार काव्य यथार्थ का कोरा अनुकरण अर्थात् प्रतिविंबमात्र नहीं हैं। कलाकार अपनी प्रतिमा के बल से नवीन सृष्टि करता है। वाह्य तथ्यों का आश्रय तो वह अवश्य ग्रहण करता है, पर उनकी नकल करने में ही अपने कार्य की सफलता कदापि नहीं मानता। वह यथार्थ को समान्य तथा व्यष्टि को समष्टि का रूप देकर उसमें सार्वभौमिकता उत्पन्न कर देता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यथार्थ के साथ उसे कल्पना का मिश्रण करना पड़ता है। दोनों के मेल से मन में जो अभिनय रूप-विधान होता है उसी का कवि शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। कालरिज ने कल्पना की क्रियात्मक शक्ति और नव-निर्माण की क्षमता पर जोर देकर बहुत-कुछ अरस्तू की ही बात को अधिक स्पष्ट करते हुए उसका समर्थन किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही यूरोपीय काव्यक्षेत्र में कल्पना का आग्रह अधिकारिक स्वीकृत हो रहा है। अत: हम कह सकते है। क काव्य-दर्शन में अरस्तू की

परंपरा आज भी गजीव है। फलतः प्रायः सभी लोग सत्य और काव्य के सत्य में भेद मानते है। काव्य का सत्य केवल बुद्धि की सहायता से गृहीत नहीं होता, क्योंकि वह रागात्मक है। यथार्थ से भी यह भिन्न है, क्योंकि वह सामान्य और सार्वभौम है तथा उनका संबंध केवल अनुभव की इकाईयों से नहीं है।

इटालियन विचारक बीको का कथन है कि काव्य में सत्य का एक ही मानदंड है-निर्माण-सौष्ठव। इस मत के अनुसार काव्य में सत्य का आभास किसी कृति के आंतरिक विकास से मिलता है। विविध अंग और उपांग एक दूसरे से इस प्रकार संबंध होते है और उनका सामंजस्य इतना उतम होता है कि मन पर एकता का प्रभाव स्वतः उत्पन्न हो जाता है। कालरिज ने एकता में दो प्रकार के भेद किए है- आरगेनिक एकता और मिकेनिक एकता। कुम्हार जब गीली मिट्टी से कोई पात्र अथवा मूर्ति बनाता है तब वह अपनी रचना पर एक बाह्य योजना का आरोप करता है। इसको गिकेनिक अथवा यांत्रिक एकता कहते है। इसके विपरीत किसी जीवित प्राणी का विकास आंतरिक होता है। अतः उसको आरगेनिक अथवा संजीव एकता कहते है। इस दूसरे प्रकार के विकास और उससे उत्पन्न एकता के अभाव का कला के क्षेत्र में बहुत बड़ा महत्व है। इस प्रकार का संगठन तभी पूर्णरूपेण सफल माना जाता है जब उसमें तनिक भी परिवर्तन की संभावना न हो और कहीं भी कोई अंश अनावश्यक न दिखाई पड़े। इस सुडौलपन अथवा रूप-वैशिष्ठय को अनेक आलोचक काव्य का उचतम आदर्श मानते है। यहाँ तक कि इसी को वे लोग सतय की संज्ञा देते हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस तरह की विशेषता कला में रोचकता और प्रभाव की क्षमता प्रस्तुत करती है, किंतु इसका सत्य कहना कहाँ तक न्याय संगत है-इसपर मतभेद हो सकता है। उसे यदि हम मूल्य की कल्पना के अंतर्गत माने तो अधिक समीचीन होगा। एकता के अभाव में सौंदर्य की न्यूवता प्रतीत होती है तथा मन पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव कला अपने उच्चतम आदर्श से बंचित हो जाती है। समुचित संगठन के अभाव में हम यह कभी नहीं सोचते कि कला-वस्तु असत्य अथवा मिथ्या है।

जीवन और काव्य का घना संबंध होते हुए भी दोनों में सत्य की कल्पना बहुत-कुछ भिन्न प्रकार से होती है। काव्य में सत्य से अभिप्राय केवल तथ्य-यथार्थ अथवा बुद्धिगम्य उपकरणों से नहीं है। काव्य का सत्य तो संश्लेषण द्वारा संगठित होता है। उसमें बुद्धिभाव, विश्वास, संकेत इत्यादि का समुचित समन्वय रहता है और उनके सहयोग से ही हमारे मन में विश्वास उत्पन्न होता है। हम कह आए कि मन में उत्पन्न होनेवाला यह विश्वास ही मुख्य रूप से सत्य का द्योतक है। काव्य में यह संपूर्ण अर्थ अथवा संपूर्ण कथन द्वारा प्राप्त होता है। सत्य और काव्य के सत्य में तात्विक भेद है। अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ ने लिखा है-'सुनते है कि अरस्तू ने कहा कि कविता सब प्रकार की रचनाओं में अत्यधिक दार्शनिक होती है। यह बात यही है, क्योंकि उसका लक्ष्य सत्य है; विशिष्ट और एकदेशीय सत्य नहीं, वरन् सार्वभौम और क्रियमाण सत्य'। काव्य का विटप यथार्थ के धरातल से ऊपर उठकर फूलता और फलता है, यद्यपि उसकी जड़ जीवन के वास्तविक अनुभव की गहराई में प्रविष्ट होकर निरंतर पोषक द्रव्य प्राप्त करती है। काव्य का ध्येय केवल यथाथ की प्रतिच्छाया की प्रस्तुत करना नहीं, वरन् उसका जीवित स्वरूप खड़ा करना है;

डॉ. रामअवध द्विवेदी, एम0ए0, अंग्रेजी विभाग, काशी विश्वविद्यालय, काशी

✧ ✧ ✧

महादेवी की कविता

श्री गंगा प्रसाद पांडेय

दो पैर से सीधा खड़े होने की क्रिया में मनुष्य को असुविधाओं के साथ कतिपय सुविधाएँ भी प्राप्त हुई। एक ही रेखा में अपनी शारीरिक गति को संचालित कर सकने की अपेक्षा वह वृत्त-गति का अधिकारी बना और अपनी और अपनी आँखों का चतुर्दिक प्रसार प्राप्त किया। उसने चारों तरफ दृष्टि-निक्षेप किया नहीं कि अपने को केंद्र में स्थित पाया। उसने यह भी देखा की चतुर्दिक विखरी वस्तु-राशि में एक प्रकार का तारतम्य और संबंध है। आगे चलकर मनुष्य की यह दृष्टि-अनुभूति उसका दर्शन बनी।

अपने नाम के साथ जिस महा के महत्व को लेकर महादेवी चल है, वही महत्व उनके काव्य में भी परिलक्षित होता है।

आनंद, खोज एवं मार्दव की जिस त्रिगुणात्मक कला-प्रकृति से भारती-मंदिर का छायायुगीन निर्माण प्रसाद, निराला तथा पंत के द्वारा हुआ, उसके पूर्ण उत्कर्ष-कोल में महादेवी ने काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। इस भावधारा की कलेवर-वृद्धि का श्रेय केवल उनके वार्द्धक्य का ही कारण बनता। अतएव महोदवी ने उसमें ऐश्वर्य की प्राण-प्रतिष्ठा की और उसे ऐश्वर्यशाली बनाकर महिमान्वित किया।

वास्तव में महोदवी के काव्य का रंगस्थल ऐश्वर्य ही है। महादेवी के सहयोग से छायायुग ऐश्वर्य, आनंद, श्रोत तथा मार्दव की अंतरंग तथा बहिरंग चुतरगिणी से संरक्षित और सजित-शोभित है।

यह सर्वविदित है कि आदिकाल से लेकर आजतक अपने ऐश्वर्य के आकलन तथा स्थापन के ही माध्यम से मनुष्य चेतना के इस स्तर तक पहुँचा है। यों अन्य जीवों की भाँति वस्तु-तथ्य मनुष्य का भी प्राप्य तथा संबल है, किंतु उसका भाव-तथ्य-उसका सार-सत्य ऐश्वर्य ही है। कहना न होगा कि ऐश्वर्य का लक्ष्य अभावों की पूर्ति न होकर महत्व तथा महिमा की उपलब्धि है। मनुष्य की यह ललकार स्मरणीय है-भूमैव सुखं, नाल्पे सुखमस्ति।

उस दिन की कल्पना कीजिए जिस दिन मनुष्य ने चतुष्पद जीव-श्रेणी में जन्म पाया और सीना तानकर दो पैरों पर खड़ा हो गया। मनुष्य के अपने ऐश्वर्य-प्रकाशन का यह प्रथम सोपान था-इसमें संदेह नही। शरीर और प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने अपनी आंतरिक स्वतंत्रता का यह पहला सक्रिय उद्घोष कम आश्चर्य का विषय नहीं। यद्यपि अन्य जीवों की अपेक्षा इस विद्रोह के कारण उसे बहुत-सी शारीरिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी तथापि उसने अपने शरीर की अपेक्षा मन की विजय स्वीकार की और जीवों के बीच अपनी विजय का ध्वजा पहराया। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है। मूल पंचभूतों का श्रेष्ठतम समन्वित विकास-केन्द्र बनकर इससे कुछ कम वह करता भी क्या? प्राय: प्रत्येक प्रकार की गति में प्रभाव डालनेवाले अपने आकर्षण की चेतना से ही धरती माता ने भूमिवासी जीवों का चतुष्पद् प्रजनन किया था। संतान का हठ और उसके साहस को देखकर ही मानवी माता ने आगामी संतानों की द्विपदता स्वीकार की हो, तो आश्चर्य नहीं। हमारे यहाँ शास्त्रों ने जीव-योनियों का विकास उनके मानसिक विकास के ही अनुसार माना है। कहते है, विकासवादी डारविन भी वृक्षों में पैने काँटो की स्थिति को वृक्षों के रक्षा-भाव का ही परिणाम मानता है। जो भी जो, मनुष्य की स्वनिर्मित द्विपद-व्यवस्था उसके अदम्य ऐश्वर्य का ही प्रतीक है।

दो पैर से सीधा खड़े होने की क्रिया में मनुष्य को असुविधाओं के साथ कतिपय सुविधाएँ भी प्राप्त हुई। एक ही रेखा में अपनी शारीरिक गति को संचालित कर सकने की अपेक्षा वह वृत्त-गति का अधिकारी बना और अपनी और अपनी आँखों का चतुर्दिक प्रसार प्राप्त किया। उसने चारों तरफ दृष्टि-निक्षेप किया नहीं कि अपने को केंद्र में स्थित पाया। उसने यह भी देखा की चतुर्दिक विखरी वस्तु-राशि में एक प्रकार का तारतम्य और संबंध है। आगे चलकर मनुष्य की यह दृष्टि-अनुभूति उसका दर्शन बनी।

उसने इतने ही से संतोष नहीं किया। कर्म और दर्शन की स्वतंत्रता के पश्चात् उसके मानसिक स्वतंत्रता-कल्पना का विधान किया, जो जीवों में एकमात्र मनुष्य की ही विशेषता है। इस कल्पना के द्वारा देश और काल के परे पहुँचने की भी क्षमता उसने प्राप्त कर ली। एक होकर भी वह अनेक और अनंत की अनुभूति प्राप्त करने लगा और सहसा व्यक्तिगत छोड़कर विश्वगत बन बैठा। मुनष्य के इस विकासतत्व की नाप-तोल और विश्लेषण संभव नहीं स्वत: स्फूर्त आत्मचेतना की तराजू अभीतक वैज्ञानिक भी नहीं बना सके।

भारतीय मनीषियों ने से सत्य का स्वयंप्रकाश और मनुष्य की आत्मोपलब्धि कहा है। यही उसकी चरम प्राप्ति है। चूँकि इस सत्य का साक्षात्कार मनुष्य के माध्यम से हुआ है, इसलिए यह समझना सहज है कि आदि अंत हीन सत्य, परमतत्व मनुष्य के माध्यम से अपने को प्रतिष्ठित करना चाहता है। वस्तुत: मनुष्य का स्वभाव शाश्वत सत्य के अनुकूल बनते चलना है। मनुष्य के सारे ज्ञान-विज्ञान, दर्शन-साहित्य उस सत्य की पूर्ण प्राप्ति के ही माध्यममात्र हैं, स्वार्जित निधियाँ हैं, ऐश्वर्य-स्थापनाएँ है।

साधारणत: मनुष्य की दो स्थितियाँ हैं- एक प्रत्यक्ष शारीरिक और दूसरी मानसिक एवं आध्यात्मिक। इसी बात को हम इस प्रकार भी कह सकते है कि मनुष्य के भीतर दो भाव है- एक उसका जीवभाव और दूसरा उसका विश्वभाव। जीवभाव आकांक्षा और तृप्ति के प्रयोजन की

प्रदक्षिणा करता भटकता रहता है, किंतु विश्वभाव एक आदर्श को लेकर जीवित रहता है। यह आर्दश उसके अंतर का आह्वान-एक रहस्मय निर्देश है।

ऋग्वेद ने उसकी व्याख्या इस प्रकार की है-
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

जीव-गत प्रक्रिया में उसका केवल चतुर्थांश परिलक्षित होता है, बाकी वृहत् अंश अमृतरूप ऊर्ध्य में है। मनुष्य इस तथ्य को प्राप्त करने की साधना में संलग्न है। अहं को लेकर जिस प्रकार वह अहंकार का स्तूप खड़ा करता है, उसी प्रकार अहं से वियुक्त आत्मा में भूमा की उपलब्धि भी वह कर सकता है। उपनिपद् में कहा गया है कि संभूति और असंभूति के साधनात्मक समन्वय से ही सत्य का रहस्य स्पष्ट होता है। सहज जीवन में भी प्राय: प्रत्येक मनुष्य यह अनुभव करता है कि बाहर जो कुछ भी वह है, भीतर उससे बहुत बड़ा है। ठीक उसी तरह जैसे किसी एक मनुष्य से निखिल मनुष्यता बहुत बड़ी है। आशय यह कि मनुष्य एक ओर मृत्यु के अधिकार में है तो दूसरी ओर अमृत के, एक ओर यह व्यक्तिगत सीमा में बंदी है तो दूसरी ओर विश्वगत विराट में मुक्त। मनुष्य स्वयं जानता है कि सद् दूरे तर्दतिके च-वह दूर भी है, पास भी है। इसीलिए मनुष्य का जो संसार उसके क्षेत्र में है, उसे वह सीमित करता है, किंतु जो संसार उसकी आत्मा के क्षेत्र में है, उसे असीमित बनाता है। उसकी सार्थकता भूमी में है, जहाँ मनुष्य की विद्या, मनुष्य की साधना समस्त काल के समस्त मनुष्यों को लेकर सत्यरूप में प्रतिष्ठित होती है। मृत्यु के, मध्य से अमृत की स्थपना में मनुष्य का चरम ऐश्वर्य उदासित होता है-

अप्रतिष्ठितं वै किल ते साम,
अन्तवद् वै किल ते साम।

आदि भूत की सीमा में जो प्रश्न उलझ गया था, वह उसकी सीमा पार कर आगे निकल गया। संभवत: इसी कारण जीवों के बीच केवल मनुष्य ही अमिताचारी बन पाया है। वह अमित पाना चाहता है, अमित देना चाहता है, जो उसके भीतर प्रतिष्ठित अमित मानव का ही प्रकाशमात्र है। उपनिषद् में भगवान के संबंध में एक प्रश्नोत्तर है-स भगव: कस्मिन् प्रतिष्ठित:। वह कहाँ प्रतिष्ठित है? इसका उत्तर है-स्वे महिम्नि। अपनी महिमा में। मनुष्य भी अपनी महिमा में आनंदित होता है। किसी विशाल भूमिका में अपने भीतर के सत्य को प्रकट करना चाहता है। पग-पग पर सीमा को मानकर चलने से चेतन-विज्ञान तो क्या, भौतिक विज्ञान भी कभी का ठप हो गया होता। संसार की गति का कारण मनुष्य की सहज सीमित अवस्था और उसके असीमित स्वभाव का द्वंद्वही है। सहज सीमा में वह अपनी जीविका का आकलन करता है और स्वभाविक असीमता में अपनी महिमा का, अपनी विराटता का, अपने ऐश्वर्य का प्रकाशन। कहा गया है कि 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।' मानवधर्म का गंभीर सत्य गोपन में संरक्षित है। मनुष्य का देहधर्म 'यही मैं' प्रत्यक्ष है, और स्वभावधर्म 'वहीं मैं' अप्रत्यक्ष। इन दोनों के बीच के ऐक्य को समझकर ही उपनिषद् ने उपदेश दिया था-प्रतिवोध विदितम्।

आभारभूत इस सृष्टिगत एकता और एकात्मकता का बोध प्राप्त करने के बाद मनुष्य ने अपने भीतर छिपे हुए रहस्य के उद्घाटन की सतत चेष्टा में तल्लीन हो गया। उसने सोचा कि

जीवन, जगत् तथा मनुष्य की वास्तविक पहचान इस रहस्य के उद्घाटन से ही संभव है। पिछली मानवता इसी प्रथा में आगे बढ़ती आई है और अपनी पूर्ण सफलता तक बढ़त जायगी। वेद ने मनुष्य की इसी प्राप्ति को 'ऋतं सत्यम्' कहा है। प्रकृति-प्रदत्त सीमा को पार कर अपने आत्मिक सौंदर्य को प्राप्त करने में ही उसकी सार्थकता है। इस दृष्टि से अखिल विश्व मानव के मन की भूमिका में प्रतिष्ठित हो जाता है। समस्त सृष्टि के बीच एक ही आत्मा को अपने भीतर अनुभव करना ही इस पथ की ऐश्वर्यमयी सीमा है।

दर्शन और काव्य-दोनों के माध्यम से मनुष्य ने इस बांध के पाने का प्रयास किया है। महादेवी मुख्यत: कवि है, किंतु उनकी कविता दर्शन से समन्वित और सुगठित है। उनके काव्य में कवित्व के साथ-साथ दर्शन की भी अलग महत्ता है। कतिपय विद्वानों की राय है कि कवित्व और दर्शन का सँमिश्रण सुकर या संभव् नहीं होता, किंतु मुझे इन दोनों के विरोध की कोई संभावना नहीं जान पड़ती। कवि सौंदर्य का साधक होता है और दार्शनिक सत्य का शोधक। यो भी सौंदर्य का साधक सत्य का उत्पादक है और सत्य सौंदर्य का रक्षक। आशय यह है कि सौंदर्य और सत्य के पथोंक पर्यवसान एक ही चरम केंद्र सत्ता में होता है। जो भी हो, महादेवी ने काव्य और दर्शन का बहुत ही संतुलित स्वरूप ग्रहण किया है, तभी उनका काव्य उस परमतत्व की खोज तथा उपासना एवं उसकी पूर्ण प्राप्ति का सुंदर सोपान है। कवींद्र रवींद्र ने कहीं पर ऐसा कहा है-भारत में दर्शन का काव्य से शाश्वत संबंध रहा है, क्योंकि यहाँ के दर्शन का उद्देश्य जन-जीवन का आध्यात्मिक उत्कर्ष है, नकि तर्कजाल की गुत्थियों में उलझकर उनके सुलझाने की चेष्टा में विद्वता-प्रदर्शन? महोदवी का दर्शन तर्कजाल नहीं, वरन् आत्मा की जीवनव्यापी भावात्मक अनुभूति का सुफल है कहना न होगा कि उनका दर्शन उतना ही व्यापक और महान है, जिनका उनका कवित्व। उनका दर्शन यदि सत्य का बोध है तो उनका काव्य उस सत्य का सौंदर्य-प्रसाधन। यह विशेष महत्त्व की बात है कि महोदवी का दर्शन उनके काव्य की कलात्मकता से उसी प्रकार करूणा-कोमल है जिस प्रकार उसका अश्रु-सिंचित आत्म-भाव-कोमल कुसुम। इस स्थल पर महोदवी ज्ञानयोगी की अपेक्षा भावयोगी है।

भारतीय दर्शन के सारतत्व गीता में जीव की चरम शांति के तीन मार्ग निर्दिष्ट हैं-ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग (भावयोग अथवा प्रेमयोग)। महोदवी प्रेमयोग को ही उसकी प्राप्ति का साधन मानती है। प्रेम, भाव और क्रिया की ऐसी संयुक्त-समन्वित जीव-स्थिति है जो ज्ञान और कर्म को, सहज ही अपने में समाहित कर लेती है। प्रेम कर्म का त्याग नहीं, गुरूतम ग्रहण है; क्योंकि कर्म की प्रेम की लीला है प्रेमी के व्यक्तित्व का उन्मेष कर्म से ही होता है। उसके साथ ही यह भी ठीक है कि कर्मों की द्विविधा का अंत भी प्रेम से ही संभव है, क्योंकि अद्वैत का आकलन प्रेम के द्वारा संभव है। यही प्रेम जीवन की मूल प्रेरक शक्ति है। प्रसाद ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है-

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेमकला।

प्राणी की कोई भी प्रेरणा इसके अभाव में जीवित नहीं रह सकती। यही प्रेम श्रद्धा और विश्वास के दोहरे सँविधान से जीवन के परमतत्त्व एवं चरम निष्कर्ष का परम अधिकारी बनता है।

यह स्मरण रखना होगा कि ऐसा प्रेम कभी कर्मों का-संसार का त्याग नहीं हो सकता, बल्कि शत-शत कर्मों द्वारा वह अपने को प्रतिष्ठित, प्रमाणित तथा प्रकाशित करता चलता है। महोदवी ने लिखा है-

बन्दिनी बनकर हुई
मैं बंधनों की स्वामिनी-सी।

महोदवी ने अपने कर्म तथा काव्य के द्वारा विश्व की अनादि चरम-चेतन-शक्ति का स्पष्टीकरण तथा भावन किया है। इस युग में रवींद्र तथा महोदवी का यही काव्य-पथ है।

यह तो स्पष्ट है कि इस युग ने अपनी बौद्धिक तथा वैज्ञानिक उन्नति से मनुष्य में एक ऐसी अहमिका भर दी जिसके परिणामस्वरूप वह अपनी चिर-सहचरी प्रकृति से अपने स्नेह-संबंध विच्छिन्न कर एक विजयी और विजित के स्वरूप में बिहार करने लगा।

रवींद्र का काव्य, छायावादी काव्य, महादेवी का काव्य इसी अनर्थकारी भौतिकता के प्रति विद्रोह का स्वर है, सक्रिय संचरणा है। आश्चर्य है कि कतिपय समालोचक इस युग की काव्यधारा का अँगरेजी की रोमांटिक काव्यधारा से मिलान करते है। विश्व के प्रथम महायुद्ध के पहले से लेकर उसकी विनाशकारी समाप्ति तथा दूसरे युद्ध की संभावना-स्थिति तक सारे संसार में भौतिकता के विरूद्ध जो भावात्मक तथा आध्यामिक प्रतिक्रिया हुई, हमारा आधुनिक साहित्य उसी की सबल चेतना है। इस युग चेतना की परिव्याप्ति भारत के प्राय: समस्त प्रांतीय साहित्यों में समान है। सृष्टि के अटूट नियम के अनुसार भौतिकता के तांडव-नृत्य से विकंपित धरती में इस युग में भारत को ही चेतन स्वरों की सुरीली मनोमोहक तान छेड़नी थी। आश्चर्य कि देश का सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक जीवन संयुक्त रूप से एक ही तान-लय में लवलीन होकर मुखरित हो उठा।

युद्धों की बर्वरता के युग में महात्मा गांधी ने राजनीति के क्षेत्र में, रवींद्र से प्रारंभ होनेवाली छायायुगीन चेतना को चरितार्थ किया। सत्य-अहिंसा के स्नेहमय व्यवहारों से, अँगरेज-जैसे कूटनीतिज्ञों से स्वराज्य प्राप्त करना भारत की ही नहीं, विश्व की महत्त्म आश्चर्यजनक घटना है। बीसवीं शताब्दी की मनुष्यता की यही विजय है। यों यह सृष्टिक्रम का ही एक विधानमात्र है। प्रत्येक युग में जीवन के विकाशील तत्त्वों की उद्‌भावना कभी किसी मानव-समूह से, कभी किसी मानव-समूह से अपना पथ प्रशस्त करती रहती है। हम तो इसे भी मानते है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

वस्तुत: छायायुग युग-चेतना का प्रतीक है-अखिल जीवन के विकास का स्वर-संधान, अथवा मोड़ है। मनुष्य और शेष प्रकृति के बीच जिस साहचर्य, सौहार्द तथा संबंधा की छायायुग ने स्थापना की, यह अद्वितीय होने के साथ इस भौतिक विज्ञानी युग में चेतन-विज्ञान की प्रतिष्ठा का द्योतक, समर्थक और सजग प्रहरी है। दु:ख है कि इस काव्य का व्यावहारिक उपयोग तथा सम्यक् समालोचन अभी तक नहीं हो सका। अन्यथा विश्व के विचारक तथा साहित्य-पारखी इसकी प्रशंसा करते कभी न थकते। इस पयस्विनी के भगीरथ रवींद्र की दुंदुमि दुनिया में वज चुकी है।

कुछ भी हो, अब समय आ गया है जबकि इस बात की घोषणा की जा सकती है कि भारतीय साहित्य का यह युग इस युग के विश्वकाव्य में श्रेष्ठ और सुंदरतम है। निस्संदेह बीसवीं शताब्दी की बाजी भारत की है।

कवींद्र रबींद्र ने गीताजॅलि द्वारा जिस परमतत्त्व की भावात्मक रहस्यमयता का उद्घाटन किया था; महादेवी भी उसी पथ की पथिक है। आचार्य शुक्ल तक ने रहस्यबादी अनुभूतियों की सघनता में महादेवी को रवींद्र के साथ रखा है। यह स्मरण रखना होगा कि इन दोनों कवियों की भाव-निकटता विभिन्न होते हुए भी दो विशाल पर्वतों की चोटियों की निकटता है। सच तो यह है कि भारती के इन दोनों पुजारियों में पूजा का विन्यास एक वर्णाच्छटा से प्रोज्जवल और प्रगतिशील है। दोनों के काव्य-सुमनों में एक ही वर्ण, गंध, रस तथा सरसता की सुरभित समता-प्रदर्शन का न तो यहाँ अवकाश है और न अवसर, किंतु इतना समझ लेना पर्याप्त है कि दोनों ही युग-काव्य की रहस्यवादी धारा के युगल कूल हैं।

हाँ, तो रहस्यवाद एक प्रकार का प्रणाय-प्रशस्त काव्य पथ है। इस पथ का अनुसरण करने के लिए परमचेतन तत्त्व (ब्रहा) पर आस्था और उसकी परमशक्ति पर विश्वास रखना आवश्यक है। महोदवी को यह आस्था अज्ञातरूप से शैशव में ही ममतामयी आस्तिक मा से मिल चुकी थी। कालक्रम से दर्शन के अध्ययन, प्रकृति के निरीक्षण और जीवन की वैराग्मयी स्थिति ने उसे और भी दृढ़ तथा भास्कर बना दिया, तो यह स्वाभाविक ही कहा जायगा।

उनका विश्वास है कि एक ही चेतन से इस सृष्टि की रचना हुई है और वही उनका उपास्य, अतः प्रियतम है। नारी-सुलभ कोमलता के कारण शक्ति और सौंदर्य के उस अनादि-अजस्त्र स्रोत को महादेवी ने जो प्रेमाश्रयी आधार दिया है, और उस चिर-सुंदर से अपना प्रेम संबंध स्थापित किया है, वह बहुत दिव्य, सुंदर से अपना प्रेम संबंध स्थापित किया है, वह बहुत दिव्य, सुंदर और स्वाभिक है। प्रकृति के विभिन्न अंशो का पारस्परिक आकर्षण पार कर महादेवी ने प्रकृति का पुरूष (ब्रहा) के प्रति आकर्षण को अपना आधार बनाया है। यों तो संबंधो का अपना अलग-अलग महत्त्व है, पर प्रेम का ही संबंध मधुरतम होता है। प्रियतम और प्रियतमा की तन्मयता अन्यत्र कहाँ सुलभ-संभव है? महादेवी ने गर्व के साथ लिखा है-

प्रिय चिरंतन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी में!
श्वास में मुझको छिपाकर
वह असीम विशाल चिर धन,
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध-सा-धन,
छिप कहाँ उसमें सकी
बुझ-बुझ जली चल दामिनी में!

छाँह को उसकी सजनि नव आवरण अपना बनाकर, धूलि में निज अश्रु बोने में पहर सुने बताकर, प्रात में हँस छिप गई।

ले छलकते दृग यामिनी में ! मिलन-मंदिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल गुंठन, मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों

तप्त सिकता में सलिल-कण, सजनि मधुर निजत्व दे

कैसे मिलू अभिमानिनी में ! दीप-सी युग-युग जलूँ पर वह सुभग इतना बता दे, फूँक रो उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे, बह रहे आराध्य चिन्मय

मृणासी अनुरागिनी में! स्जल सोमित पुतलियों पर

चित्र अमिट असीम का वह, चाह एक अनंत बसती प्राण किन्तु समीप-सा बहू, रज-कणों में खेलती किस-

बिरज बिधु की चाँदनी में! रहस्यवादी विश्वासों के साथ इस कविता में महोदवी ने मानव-जीवन में एक ऐसे ऐश्वर्य की अवतरणा की है, जो इस काव्यधारा को केवल उनकी देन है। उनका कहना है-मेरा प्रिय (ब्रहा) चिरंतन है। मैं क्षण-क्षण परिवर्तित होती हुई नवीन सुदामिनी हूँ। मैं वह चंचल विद्युद्गति-आमा हूँ जिसे अपने श्वास में छिपाकर बादल-सा वह असीम प्रिय शून्य आकाश में छा गया। मैं उसकी सरस-सजीली प्रेम की इच्छा के कारण उसमें छिपी न रह सकी, जल-जलकर घुमी रही और बुझ-बुझकर जलती रही ! मैं वह रात्रि हूँ जो उस प्रकाशमय प्रिय की छाँह ओढ़कर अपना समय धूल में आँसू गराने में बिताती रही और प्रातःकाल प्रकाशमय होने के समय-प्रिय से मिलने के समय हँसकर छिप गई। यदि मिलन-समय में मैं अपने मुख से यह करूणा घूँघट उठा दूँ तो मैं उस प्रिय में उसी प्रकार मिट जाऊँ जिस प्रकार गरम बालू में पानी की बूँद। मैं अपने मधुर व्यक्तिव का, अपने मन को मिटाकर उससे कैसे मिलूँ? उसकी प्रियतमा होने का मेरा अपना अलग अभिमान है, ऐश्वर्य है। मेरी इच्छा है कि मैं युगों तक दीप की तरह जलती रहूँ; पर जय मैं उसकी इच्छा से ही कभी बुझूँ तब भी राख में मेरा अपमानपन अक्षुरण रहे। वे सदा मेरे आराध्य रहें और मैं उनकी प्रेमिका; क्योंकि मेरी प्रेममयी सीमित आँखों में असीम का कभी न मिटनेवाला चित्र है और मेरे ससीम हृदय में उसे प्राप्त करने की अनंत अभिलाषा। धूल के कणों से निर्मित संसार में क्रीड़ा करती हुई मैं उसी दिव्य विधु (ब्रह्मण) की चाँदनी हूँ।

ब्रह्म-ज्ञान का चरम लक्ष्य मोक्ष महादेवी का साध्य नहीं । उनका तो कहना है-

क्यों मुझे प्रिय हों न बंधन?
बीन बंदी तार की झंकार है आकाशचारी,
धूल के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिम्हारी,
बँधती निर्बध को मैं
बंदिनी निज बेंड़ियाँ गिन!

रवींद्र ने भी यही कहा था-

वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय
असंख्य बंधन माझे महानन्दमय
लभिवो मुक्तिहर स्वादु एइ वसुधार,
मुक्तिकर पाथखानि मरि बारम्बार।

जीवन की ऐसी की उद्भावनाएँ मनुष्य की विकासशील चेतना की साक्षी है, क्योंकि विकास का अर्थ ही यह है कि हमें अपने आदर्श, कर्म, ज्ञान और प्रेम के द्वारा व्यक्ति-रूप से विश्वरूप में प्रतिष्ठित होना 'एकोह बहु स्वाम' को चरितार्थ करना है। इस विराट व्यक्तिव का संग्रह करने के लिए संसार की सभी वस्तुओं, स्थितियों के प्रति एक सामंजस्यपूर्ण स्नेहिल स्वभाव की अपेक्षा रहेगी-यह निश्यित है। हमारे परमानंद की अनुभूति केवल तभी संभव है जब हम अपने को सबके साथ मिला हुआ पावें, अन्यथा नहीं। संभवत: इसीका संकेत इस कविता में महोदवी ने किया है-

अलि, मैं कण-कण को जान चली।
सबका क्रंदन पहचान चली!
X X X X X X X
इन आँखों के रस के गीली।
रज भी है दिवि से गर्वीली।
मैं सुख से चंचल दुख-बोझिल,
क्षण-क्षण का जीवन जान चली!
मिटने को कर निर्माण चली?

वे साहस और विश्वास के साथ कहती हैं कि उन्होंने मुख-दुख के आँसुओं को जान लिया है और दुख को सुख बना लिया है। मैंने काँटे के उस पैनेपन का जो उसके एकाकीपन का प्रतीक है; इसमें निहित मधुर भाव को समझ लिया है। इसीलिए मैंने जीवन को चिर-गति का वरदान भी दे दिया है। मेरे आँसुओं से भींगा यह छोटा सीमित जीवन स्वर्ग से भी अधिक गर्वीला है। स्वर्ग में दुख का अभाव है और जीवन में एकरसता है। वस्तुत: मैं सुख से उदासीन और दुख से भरी हूँ। मैंने क्षण-क्षण के जीवन रस का आनंद लिया है और मिटने को निर्माण का रूप दिया है।

आधुनिक काव्यालोचन में महोदवी के आँसुओं का काव्यगत विधान कई प्रकार के आलोचित हुआ है; परंतु इसकी मार्मिकता की पकड़ नहीं हुई। महादेवी ने स्वयं उसे इस प्रकार स्पष्ट किया-

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक-सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दुख
आँसू बनकर खोता है।
जग हँसकर कह देता है
मेरी आँखें है निर्धन।
इनके वरसाए मोती
क्या वह अबतक पाया गिन?

जिस दुख से संसार बेसुध होकर बालकों की भाँति निरूपाय है, वह मेरी आँखें में आँसू बनकर स्वयं नष्ट होता रहता है। संसार हँसकर कह सकता है कि मैं निर्धन की भाँति किसी भौतिक अभाव में रोती हूँ, किंतु आजतक क्या किसी ने उन बहुमूल्य आँसुओं को गिनने का साहस किया है और-

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक से ब्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पोड़ा।

इस प्रकार महोदवी ने दुख को भी ऐश्वर्य से भर दिया है–

सखे, यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा तेरा संग,
यहाँ मिलता काँटो में बन्धु
सजीला–सा फूलों का रंग।

दुख के बीच मनुष्य को उसी प्रकार अपनी आत्मीय कुसुम–कोमलता संरक्षित करने का अवसर मिलता है जिस प्रकार काँटी से फूल संरक्षित रहकर अपने को (झड़ता) देखकर भी दूसरों को सुरक्षित कर जाता है। यही तो मासिक वेदना का वरदान है। चिरहिणी कली का चित्र देखिए–

पंकज–कली।
क्या तिमिर कह जाता करूण?
क्या मधुर दे जाती किरण?
किस प्रेममय दुख से हृदय में
अथु में मिश्री घुली!
किस मलय–सुरभित अंक रह–
आया विदेशी गंधवह?
उन्मुक्त उर अस्तिव खो
क्यों तू उसे भुज भर मिलो?
रवि से झुलसते मौन दृग
जल में सिंहरते मृदुल पग
किस व्रतवती तू तापसी
जाती न सुख–दुख से छली?
मधु से भरा विद्युपात्र है,
मद से उनींदी रात है,
किस विरह में अवनतमुखी
लगती न उजियाली भली?
यह देख ज्वाला में पुलक,
नभ के नयन उठते छलक,
तू अमर होने नभ–धरा के
वेदना–पय से पली।
पंकज–कली! पंकज कली!

पृथिवी और आकाश के वेदना-पय से पली, विश्व के सुख से उदासीन, विरह के दुख से बेसुध पंकज कली के सजीव और सर्वांग-चित्रण के द्वारा महादेवी ने अपने दिन कोमल-करूणा व्यक्तिगत की व्यंजना की है, वह अपूर्व है।

'नीहार' से लेकर सांध्यगीत तक, प्रकृति के आंगन में प्रभात से लेकर सायंकाल तक वनदेवी की तरह गति गानेवाली महादेवी का निसर्ग-सुंदर संसार विजन-वेदना से आकुल-व्याकुल है। यह वेदना किसी भौतिक ज्ञान की प्रतिक्रिया नहीं। इस क्षणिक जीवन के दुखों का एक-न-एक दिन नाश हो ही जाता है। युदयुदों जी ढग असंख्य प्राणियों के क्लिीन हो जाने पर भी न जाने कौन किस अज्ञात कक्ष से द्रौपदी के दुकूल की तरह नव जीवन का विस्तार करता रहता है? मानों, वह माल को पुनः पुनः कुछ समझने के लिए, कुछ गुनने-धुनने के लिए अवसर देता जा रहा है। एक-एक पार्थिव जीवन की इकाई से मनुष्य इस जीवन के आदि स्रोत उस अज्ञात के अभिप्राय का ग्रहण करने का प्रत्यन करता है। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा-जैसे सब-के-सब मरणशील प्राणी उस अमर तत्व को जानने के लिए एक दूसरे की समझ के पूरक बनते जा रहे है।

महादेवी का कवि अपने गीतों में सजल-कोमल होकर उस अनंत चिर-सुंदर के शाश्वत स्वरूप को उसी प्रकार प्रतिफलित करता हूँ जिस प्राकर सिंधु आकाश को। इसी प्रेममयी कला को उपनिषद् में आत्मा की कला कहा गया है।

महोदवी का जीवन-केवल दुख की बदली ही नहीं, सुख की सौदामिनी भी है। एक में करूणा है तो दूसरी में शक्ति।

मुस्करा दी दामिनी में
सावनी बरसात मेरी!
क्यों इसे अंबर न निज
सूने हृदय में आज भर ले?
क्यों न यह जड़ में पुलक का
प्राण का संचार कर ले?

इस प्रकार नारी हृदय की सार्वभौम करूणा और सर्वव्यापी शक्ति लकर महादेवी ने भ्रम में भटकते विश्व के लिए चिर मंगलमय की आराधना साधना की है। वर्तमान हिंदी कविता में रहस्यवाद की भावना को प्रशस्त करने की उनकी कलात्मक क्षमता अपने में अकेली है। वास्तव में उनकी काव्य-सृष्टि में मानवता की साधना, विकास की सीमा और आत्मा की पूर्णता का वही मूल प्राण पुलकित है जो आदिकाल से मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाने का एक मात्र साधन रहा है, और है। महादेवी ने अपने जीवन के संपूर्ण साधना-सार को काव्य के रूप में संसार को भेंट किया है-ऐसा मेरा विश्वास है।

हिमालय पर लिखे गए गीत से महोदवी के काव्य तथा व्यक्तित्व का स्पष्टीकरण सुलभ है-

हे चिर-महान!
वह स्वर्ण-रश्मि छू श्वेत भाल,
बरसा जाती रंगीन हास;
सेली बनता है इंद्रधनुष

परिमल मल-मल जाता वतास!
पर राग-हीन तू हिम-निधान!
नभ में गवित झुकता न शीश,
पर अंक लिए है दीन क्षार
मन गल जाता नत विश्व देख
तन सह लेता है कुलिश मार।
कितने मृदु, कितने कठिन प्राण!
टूटी है कब तेरी समाधि?
झंझा लौटे शत हार-हार,
बह चला दृगों से किंतु नीर
सुनकर जलते कण की पुकार।
सुख से विरक्त, दुख में समान!
मेरे जीवन का आज मूक
तेरी छाया से हो मिलाप,
तन मेरी साधकता छू ले
मन ले करूणा की थाह नाप।
उर में पावस, दृग में विहान।
हे चिर-महान!

रागहीन के द्वारा अनासक्त की, समाधि की अटूटता कहकर प्रकृतस्थ की, छाया कहकर प्रभाव की व्यंजना में अपने व्यक्तित्व की महिमा को महादेवी ने उस ब्रह्म की समकक्षता में सहज भाव से ही रख दिया है। हे चिर-महान, तेरा प्रभाव मूकरूप से मुझपर पड़ता रहे। मेरे शरीर में तुम्हारी जैसी साधना-शक्ति और मन में तुम्हारी करूणा भर जाय। जिस प्रकार तुम्हारे हृदय में पावस (करूणा) और आँखों में प्रभात (प्रकाश रहता है उसी प्रकार मेरे हृदय में करूणा और आँखों में प्रकाश का हास हो।

जान पड़ता है, महादेवी ने अपने भाव-सौंदर्य के ऐश्वर्य के बढ़ाने के ही लिए काव्य-कला की सृष्टि की है। उन्होंने प्रायः प्रत्येक गीत में अपने हृदय के भावविशेष को एक सजीव मूर्ति का रूप दिया है, जिसे देखकर मालूम होता है कि यह अन्य कोई प्राकृत मूर्ति न होकर साक्षात् प्रेम, करूणा या सौंदर्य की ही मूर्ति है। उनकी जैसी विशुद्ध कलाकृति हमारे साहित्य की ही नहीं, विश्व साहित्य की नीधि है।

श्री गंगा प्रसाद पांडेय, साभार 'अवंतिका'

✧ ✧ ✧

पुस्तक का नाम - अँखुआते शूल (काव्य-संग्रह)
कवि का नाम - हृषीकेश पाठक
प्रकाशक : आनंदाश्रम प्रकाशन, गाजियाबाद (उ.प्र.)
मूल्य रू० : 200.00 पृष्ठ सं0 128, संस्करण-प्रथम (2018)

आमलोगों को जागृत करनेवाली कविताओं का संग्रह 'अँखुआते शूल'

जिया लाल आर्य

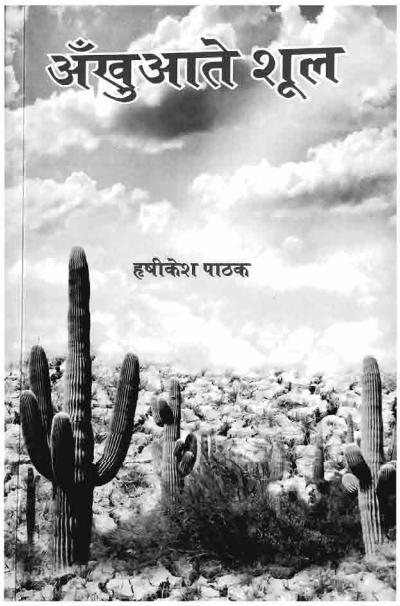

काफी अंतराल के पश्चात् 'अँखुआते शूल' जैसी काव्य-कृति को पढ़ने का अवसर मिला। महानगर की गगनचुम्बी प्रसादों से निकलकर गली-कूचों की झोपड़ियों से होती हुई गरीब की आत्मा का स्पर्श करती हुई पाठकों के दिल-दिमाग को झकझोर देती हैं, इस कृति की कविताएँ/कविताओं में प्रवेश करते ही पाठक को अनुभूति होगी कि पाठक जी गाँव-घर में जी रहे है। वहाँ के भाव भंगिमा और समस्याओं से सक्षात्कार करते हैं। और में जो कुछ भी लिखते है, वह स्वयं का भोगा हुआ है, या भोगे हुए लोगों के दिल-दिमाग का स्पर्श करते है। इसलिए वे कहते हैं-'मगर बदलने लगा है/मौसम का मिजाज/अँखुआने लगे हैं शूल/तन गये है युवको के सीने/नापने लगे हैं के/झोपड़ी और महल के बीच की दूरी/घोर अभाव में जीवन-बसर कर रहे युवकों के सीने भी विसंगतियो को देखकर लगने लगा है।

समीक्ष्म पुस्तक में कुल 68 कविताएँ हैं जो समाज की विद्रूपताओं की गवाह है। कवि की निगाह छोट-बड़े लगभग समस्त समस्याओं और विसंगतियों पर है। एक कविता

है 'परिवार से प्यार में ही नशा है' के माध्यम से कवि ने प्रेमचंद के होरी और धनिया की शराब से दुर्गति की वास्तविकता बयां की है। लेकिन फिर जब बिहार में शराबबंदी हुई, उससे अतिपिछड़ा समाज कितना खुशहाल हुआ, उसका जीता-जागता दस्तावेज है-'आज बहुत खुश है धनिया/क्योंकि/हरिया के हाथ में/फल और सब्जियों का झोला है। हाथ में बोतल की जगह बच्चों के लिए टॉफी है। और परिवार से प्यार में ही नशा को अंततः दारू के दवानल में दरिंगदगी करने वाला हरिया भी स्वीकार करता है।

कवि की निगाह अन्तरराष्ट्रीय समस्या बन चुकी आतंकवाद पर भी है। इसीलिए 'मानवता का दीप जलाएँ' कविता में कवि कहता है कि 'एक ऐसा दीप जलाएँ/जो छाँटे दे अँधेरा/मानवता का पताका/इतना ऊँचा लहरायें/कि हाथी हो आतंक पर सवेरा। कवि का यह संदेश स्वागयोग्य है।

समीक्ष्म पुस्तक में 'वह छोटा बालक' कविता बूट पॉलिस कर पाये श्रम मूल्य में बीमार माँ के लिए औषधि लेता है। अपनी इच्छा से बूट पॉलिस के डिब्बे में बंद रखता है। ऐसे दृश्य आज भी रेलवे स्टेशनों, सार्वजनिक स्थानों पर हृदय को छू लेते है। निराला के भिखारी का सजीव मिश्रण है यहाँ। 'असमय घुटती साँसे' कविता की पंक्तियाँ भी निरालीय ढंग से कहती है-'पेट-पीठ एकाकार/मांसाभाव में उभर आई है हड्डियाँ/वर्तमान लोकतंत्र की ढाँचा की तरह/ठहर गयी है चक्षुओं की चंचलता/अटल गहराई में/विलोपित होती मानवता की तरह/होठों पर सूखी पपड़ियाँ उभर आई है/भ्रष्टाचार के बढ़ते सैलाब की तरह/टेढ़े हो गये हैं हाथ-पैर/बेढंगी व्यवस्था की तरह/झुक गयी है जन्म के साथ ही कमर/भारतीय अर्थ व्यवस्था की तरह/लोकतंत्र पर इतना तीखा तंज कवि के साहस का परिचय दिखता है। कवि प्रशंसा के पात्र है।

संसद तक पहुँचना आम आदमी के लिए आसान नहीं हैं। लेकिन कवि आशावादी हैं और आम आदमी को संसद तक पहुँचने की आस रखता है कि अब भूखली निर्वस्त्र नहीं होगी, अजनसिया को मिलेगी भर पेट रोटी, सरला डोम और लाला चमार के पुस्तैनी आरक्षित रामों से छुटकारा मिलेगी। निश्चित रूप से 'निकल पड़े है आम आदमी' कविता जागृत करने का काम करेगी। लेकिन 'सत्ता की ललक' कविता में कवि की आशंका सही है कि संसद में पहुँचते ही आम खास बन जाता है और आम आदमी की चिन्ता नहीं रह जाती।

समीक्ष्य पुस्तक में एक कविता है- 'होली पर'। इस कविता के एक-एक शब्द दिल दहला देते हैं-बच्चों के संग फटे वसन में/जाड़ा ठिकुर कर बीत गया/जमुनी, राधा, भाँदू, बीरा/लगता दुःख घट रीत गया। कवि ने गाँव को और गाँव के लोगों को बहुत गरीब से देखा ही नहीं, उनके साथ किया है। नगर में रहकर भी में गाँव, आम आदमी, पीड़ा, भूख, विद्रूपटताएँ मिलती हैं। इसलिए इनकी कविताएँ जीवन्त लगती है। उसमें कवि कहता है-'रंग-अबीर की लाली कहाँ/पूरा जिस्म लहूलहान हुआ।

'मंदिर का अर्थ' कविता समसामयकि ही नहीं बल्कि मंदिर बनाने वालों पर करारा प्रहार किया गया है। मंदिर की याद या तो निर्वाचन के समय आती है या चंदा देने वाले हिसाब मांगने लगे हैं और शेष समय में-जरा-जूट बढ़ा कर/घेर लिए हैं अयोध्या को/और राम भक्त बनकर/चाँदी के

झूलों में झूलते हैं/वातानुकूलित कुटियों में/नाजुक बाहों के घेरे में/ऐशो-अराम करते हैं/और रह-रह कर/राम की गुहार भी लगाते रहते हैं/ताकि साधु होने का अर्थ/महसूस होता रहे।

समीक्ष्य पुस्तक में स्त्री-विर्मश पर कई कविताएँ है। इन कविताओं में भूसली जैसी पात्र का याद बार-बार आती है, कहीं दहेज के नाम पर, कहीं शोषण के नाम पर और कहीं सम्पूर्ण राष्ट्र धधकता नजर आता है, बहनों की चीत्कार के साथ। और फिर हम सोचने के लिए बाध्य हो जाते है कि 'हम कहाँ है' 'आश्वासन के पुरूष' कविता को देखें तो नेताओं की याद आती है, जिनकी कथनी और करनी में कभी साभ्यता दिखी ही नहीं। लेकिन कवि आशावित है कि में आश्वासन के पुरूष वास्तविकता के फल मे बदले, तो ठंडे पड़े चूल्हो से भी धुआँ निकलने लगेगा।

सक्षरता देश के समक्ष प्रमुख मुद्दा है भारत के पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने 2015 तक साक्षरता का प्रतिशत 75% निर्धारित किया था। 2017 में साक्षरता मात्र 74% ही रही। इस विषय पर कवि ने बड़ी गम्भीरता से लिखा है कि ग्रामीण क्षेत्रे में बाँस के खूंटा पर लालटेन टंगी है, पैबंद लगी दी पर, नीम के पेड़ के नीचे बैठकर अर्द्धवस्त्रभारी विद्यार्थी पढ़ने को मजबूर है। अज्ञानतावश लोग अभी भी आडम्बरी ओझा के पास बिच्छू की दवा के लिए जाते है। यही है साक्षरता और साक्षरता का भविष्य।

राष्ट्रीयता और देशभक्ति आजकल भाषण तक सिमटकर रह गयी है। सँचिकाओं की हेरा फेरी में, करोड़ो के डकार गये, देशभक्ति का नया नमूना छोड़ गये। आज के नेताओं की पोल खोलती है 'शव-परीक्षा' कविता की ये पँक्तियाँ। लोकतंत्र के नाम पर राजतंत्र का कैसा खेल खेला जा रहा है 'प्रतिमा' कविता से स्पष्ट है, जिसमें कवि कहता है कि लोकनायक जयप्रकाश नारायण, जो स्वतंत्रा संग्राम के साथ आजाद भारत में भ्रष्टाचार के विरूद्ध 1974 में सम्पूर्ण क्रांति का नारा दिये, आज के चौराहे पर प्रतिमा मे कैद है और प्रतिमा सोचती है कि मुझमें प्राण आ जाते तो/एक और लड़ाई लड़कर भारत माता को मुक्त कराता/खअर की खास में/देशभक्त बनकर घूम रहे भेड़ियों से।

समीक्ष्य प्रस्तक की कविताओं में पाठकों को आमलोगों को जागृत करने वाली ऊर्जा है। इसलिए इसकी भाषा सरल, सहल, गाँव से जुड़ी हुई और दिल को छूने वाली है। काव्य के भावो को अनपढ़ से लेकर विद्वान तक समान रूप से समझ सकते हैं। यही कवि के काव्य की सफलता है। इसके लिए कवि हृषीकेश पाठक की बधाई है।

जिया लाल आर्य, भा0, प्र0 से0 (से0नि0), आर्य निवास, 23, आई.ए.एस. कॉलोनी,
किदवईपुरी, पटना, मो0 नं0 : 7979771265

दिव्यांजलि

प्रभु मेरे!
तुम कण-कण में हो धुले मिले
मैं देख न पाता
यह कैसा सम्बन्ध अलौकिक
अद्‌भुत इसका यह नाता
बादल से पानी
पानी से नदिया
बही चली जब
मिली सिन्धु से
फैला आकार बना है
सिन्धु बनाने वाला बादल
नभ को नाप रहा है
माया यह तेरी अनजानी
सूझ-बूझ के बाहर
भीतर-बाहर संशय खाली
समझ सका क्या नाहर
जीव-जगत की यही कहानी
सटा हुआ अणु अणु से
तुम विराट लघुता के वाहक
छोटे हो कण-कण से
पूछ रहा मैं तुमसे बोलो
मैं धारक तेरा मैं समझू
क्या तेरा मैं गहना
द्वन्द्वबहुत है
फिर भी मन में
आँखे मेरी साफ करो
देख सकूँ तुमको मनमाफिक
कुछ प्रकाश दृग और भरो।

डॉ. इन्द्र कान्त झा

✧ ✧ ✧

नन्हे सेंटा

नेहा भारद्वाज

ओह! माँजी, आप इस समय, सब ठीक तो है न ! आइए, हाँ.... बहू ! सब ठीक है तुम दोनों बताओ क्या हुआ ....?? जब से आये हो गुमसुम और खामोश हो, बहुत कोशिश की कुछ पूछने की, पर हिम्मत नही हो पाई। पर अब जब मुझे नींद ही नहीं आ रही थी तो तुम्हारी लाइट जलती देख कर आ गयी । '' माँ ! हम सोच रहे हैं, की गरीब बच्चों के लिए स्कूल खोल लें, आप और आकांक्षा तो उसे देख ही सकते हैं, और हो सकता है भगवान हमसे खुश होकर हमे भी खुशी दे'' रोहित ने जवाब दिया ।

"नही... माँ ! मुझे किताबें चाहिए ही चाहिए, आप ऐसा ही करती हो... हर बार ! पर इस बार नही, मेरा सेंटा आएगा किताबें लेकर! कोई सेंटा फेंटा नही आने वाला, कल भी तुझे कहा था... मैंने, कल से चुपचाप मेमसाहब के घर चली जाना, मैं उन्हें जबान देकर आयी हूँ, रुक्मणी ने झिड़कते हुए कहा। नही.... माँ! आएगा.... जरूर आएगा। मैं नही जाऊंगी... किसी मेमसाहब के घर कहकर राधा घर के बाहर भाग गई । रुक ! अरे जाती कहाँ है ...?? रुक्मणी उसके पीछे पीछे बाहर तक आ गयी, देखा तो राधा की आंखों में आंसू थे, देखकर रुक्मणी का दिल पसीज गया... रो मत ... मेरी बच्ची! तेरी किस्मत में ये किताबे, स्कूल, पढ़ाई कहां ...?? हम तो बस घरों की झूठन और उनकी गन्दगी साफ करने को ही पैदा हुए है। कहते कहते रुक्मणी का भी गला भर आया और दोनो ही एक दूसरे के गले लग कर रोने लगी । दूसरी तरफ मायूस रोहित और आकांक्षा, जिन्हें इस बार भी अनाथाश्रम से खाली हाथ जाना पड़ रहा था, दूर अपनी गाड़ी से सब देख रहे थे। हालांकि उनकी बातें दोनो को सुनाई नही दे रही थी पर दोनो को रोता देखकर ये अंदाजा लगाना भी मुश्किल नही था कि दोनो बहुत दुखी है । ''ये भी हालात के ही मारे है'' कहते कहते आकांक्षा ने रोहित की ओर देखा , लेकिन रोहित सोच में था, कहने लगा ''चलो पास चल कर देखें तो माजरा क्या है'' ...?? पर आकांक्षा को इसमें कोई दिलचस्पी नही थी। रोहित की जिद के आगे उसे झुकना ही पड़ा और दोनो उस घर के बराबर वाली दीवार से सट कर खड़े हो गए, अंधेरा भी काफी हो गया था आस पास कोई नही था। दोनो को ही

उनकी बातें समझने में देर नही लगी, दोनों ही चिंतित से वापस गाड़ी में बैठ गए और घर की ओर रुख किया । घर पर माँजी, इस बार कुछ अच्छा होने के इंतजार में बैठी थी, उन्हें भी बड़ा मन था अपने पाते पोतियों के साथ खेलने का । ईश्वर को अभी तक ये मंजूर नही था , घर मे एक नन्ही किलकारी का अरसे से इंतजार था । किसी ने कोई बात नही की । माँजी उनके चेहरे देखकर ही निराश का अंदाजा लगा चुकी थी , कुछ पूछने को हिम्मत नही जुटा पायी । खाना खाकर सोने के लिए दोनो लेटे तो , पर नींद आंखों से कोसो दूर थी , रोहित ने ही चुप्पी तोड़ते हुए कहा '' कैसी कैसी किस्मत है न , हम बच्चो को तरस रहे है और बच्चे एक अदद पढ़ाई को '' ।

आकांक्षा ने सहमति में सर हिला दिया और कहने लगी हम कर भी क्या सकते है ....?? क्यों नही कर सकते....?? जरूर कर सकते है ...?? क्यों न आकांक्षा हम कुछ गरीब बच्चों को पढाने के लिए स्कूल खोल ले , भगवान की दया से हमे किसी चीज की कोई कमी नही है , पर जैसे ही आकांक्षा ने बोलना चाहा रोहित ने कहा हो सकता है '' इस बार ईश्वर हमारी परीक्षा ले रहा हो.... ये देखने के लिए कि हम बच्चो का कितना ध्यान रखते है ....?? क्या हम एक बच्चे की जिम्मेदारी उठाने के काबिल भी है ...?? या ये सोच रहा हो कि पहले इन बच्चों का भविष्य तो कोई सुधार दे तभी मैं '' , अचानक दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी ।

ओह ! माँजी , आप इस समय सब ठीक तो है न ! आइए , हाँ.... बहू ! सब ठीक है तुम दोनों बताओ क्या हुआ ....?? जब से आये हो गुमसुम और खामोश हो , बहुत कोशिश की कुछ पूछने की , पर हिम्मत नही हो पाई पर अब जब मुझे नींद ही नही आ रही थी तो तुम्हारी लाइट जलती देख कर आ गयी । '' माँ ! हम सोच रहे है , की गरीब बच्चों के लिए स्कूल खोल ले , आप और आकांक्षा तो उसे देख ही सकते है , और हो सकता है भगवान हमसे खुश होकर हमे भी खुशी दे '' रोहित ने जवाब दिया । ये तो बहुत अच्छी बात है.... बेटा ! कल से ही कोशिश करो । हां.... माँजी ! जरूर , अगले दिन रोहित ने उस जगह का निरीक्षण किया और एक अस्थायी स्कूल खोलने के लिए वहां पास ही एक घर किराये पर ले लिया जिसमे उन्होंने बच्चो की कुछ किताबें कुर्सी , मेज और जरूरत का सामान रखा । शाम हो गयी थी अब आकांशा रोहित के साथ उसी घर के बाहर पहुंच गई और किताबों का एक बंडल रुक्मणी के हाथों में थमाते हुए बोली '' अपनी बेटी को बुला दीजिये '' बेटी ! पर आपको कैसे पता ? मेरी बेटी भी है इतने में ही राधा भी अंदर से दौड़ती हुई आयी पर रोहित और आकांक्षा को देखकर उसका चेहरा उतर गया उसे लगा कि ये वही लोग है जिनके घर काम करने जाने की जिद उसकी माँजी कर रही है । '' अरे... बेटा ! डरो नही ! ये लो ! सेंटा ने तुम्हारी किताबें भिजवाई है , सच्ची !! सुनते ही राधा की आंखें चमक गयी , अच्छा एक बात तो बताओ राधा , पूछिये....साहब , बंडल खोलते हुए राधा ने कहा पहली बात तुम मुझे साहब नही कहोगी , और दूसरी बात तुम्हारे आस पास जितने भी दोस्त है , सबको लेकर कल वहां अगली गली में एक स्कूल खुला है ... पहुंच जाना ! अगर और भी किताबें लेनी है तो '' ! रुक्मणी ने रोहित को बीच के टोकते हुए कहा '' सच कह रहे है न , साहब आप स्कूल खोलने वाले है '' ! '' हां बहनजी , बिल्कुल सच '' ! आकांक्षा ने जवाब दिया , रुक्मणी बोली ''आप चिंता मत कीजिये .... साहब , कल सुबह ही मैं सबको लेकर आती हूँ '' । ठीक है , अब हम चलते है । कहकर रोहित कार में बैठ गया ।

अगले दिन रोहित आकांक्षा और मां तीनो स्कूल पहुंच गए , सरस्वती माता की तस्वीर को नमस्कार कर सबने काम शुरू किया । रुक्मणी 8, 9 बच्चो को लेकर समय से आ गयी । कुछ की तो माँजी भी आई थी और एक दो ने घर वालो के डर से बस बच्चो को भेज दिया था । सभी ने

पढ़ना शुरू किया और धीरे धीरे बच्चे बढ़ने लगे , साथ साथ काफी कुछ सीखने भी लगे , लेकिन एक दिन आकांक्षा की तबियत ठीक नही थी मांजी के लाख मना करने पर भी वो स्कूल आयी अब स्कूल केवल मां और आकांक्षा ही चला रहे थे और बच्चे भी बढ़ रहे थे ऐसे में आकांक्षा को छुटी करना सही नही लगा पर स्कूल पहुंचते ही उसे चक्कर आने लगा । मां ने रोहित को तुरंत फोन किया , रोहित उसे डॉक्टर के पास ले गया । वहां जाकर पता चला कि आकांक्षा जल्द ही खुशखबरी देने वाली है , आकांक्षा को तो जैसे विश्वास ही नही हो रहा था , क्योंकि ! अब तो उसने ये उम्मीद ही छोड़ दी थी और स्कूल के बच्चो को ही अपनी दुनिया मान लिया था , रोहित ने जल्दी से मांजी को फोन किया मांजी तो खुशी के मारे पागल सी हो रही थी , एक बच्चे को भेजकर पास की दुकान से मिठाई मंगाई और सबको खिला कर जल्दी ही घर आ गयी । घर मे खुशी का माहौल था , ऐसा लग रहा था जैसे कोई सपना देख रहे हो कहीं नींद न खुल जाए और सपना टूट जाये । इसी बीच मांजी ने आकांक्षा को सख्त हिदायत दी कि कल से वो स्कूल नही जायेगी अब उसे कुछ दिन तो परहेज करना ही होगा ।'' पर मांजी , लेकिन '' आकांक्षा कुछ कह नही पायी क्योंकि एक तरह से मांजी सही भी थी । पर ऐसे छोड़ दिया तो बच्चो का भविष्य वो पढ़ाई कैसे करेंगे , अगले कुछ दिनों तक मांजी हो स्कूल जाती रही और सब कुछ खुद ही देखती रही एक महिला जिसका बच्चा भी वहां पढ़ता था , थोड़ा बहुत काम कर जाती। धीरे धीरे बच्चो ने स्कूल आना कम कर दिया । अब सब कैसे होगा ...?? इसी उधोड़बुन में आकांक्षा थी तभी उसका फोन बजा रोहित ने उसे कहा '' नीचे आओ , कोई तुमसे मिलने आया है '' । आकांक्षा ने नीचे जाकर देखा 3 लड़कियां खड़ी थी , ये कौन ...?? आकांक्षा ने पूछा रोहित ने कहा '' ये हमारे स्कूल की नई टीचर ! मैंने और माँ ने सब बातचीत कर ली है बस एक बार तुम फाइनल कर दो तो '' ।'' ये तो बहुत अच्छा है , अब मैं आराम से रह सकूंगी '' ।

जी मैम ! जब आपका मन हो आप स्कूल आकर सब देख सकती है , कहकर सभी चले गए । स्कूल में मांजी के साथ 3 और टीचर आयी है मौहल्ले में यही एक बड़ा मुद्दा था और साथ ही उन सब बच्चो के लिए भी , जिनकी माँजी उन्हें जबरदस्ती काम पर भेज रही थी , ये कहकर की अब तुम्हारी टीचर नही आने वाली । उनके लिए तो ये खुशी की खबर थी धीरे धीरे फिर से बच्चे बढ़ने लगे , एक दिन रोहित आकांक्षा को लेकर स्कूल आ गया , सब बच्चे बहुत खुश हुए साथ ही अपने हाथ से आड़ी तिरछी चित्रकारी भी करके उन्होंने आकांक्षा को दी । रुक्मणी और राधा भी आकांक्षा से मिलने आये , रूममनी कहने लगी '' मुझे तो लगा था.... मेमसाहब , अब आप कभी आएंगी ही नही '' ।'' ऐसा क्यों '' ...?? आकांक्षा ने पूछा , ''अब आप माँ जो बनने वाली है तो इन बच्चों में अब '' कहते कहते रुक्मणी रुक गयी ।'' ऐसी कोई बात नही है .... रुक्मणी ! और मै ये कैसे भूल सकती हूं , अगर मैं इनकी सेंटा बनकर इनके लिए शिक्षा लायी थी तो ये भी मेरे जीवन मे नन्हे सेंटा बनकर आये है और आज इन्ही की दुआओं ने मुझे ये खुशी भी दी है '' कहते कहते आकांक्षा की आंखे चमक गयी ।।

सबकी मन्नते पूरी हो गयी थी .... एक दूसरे का सेंटा बनकर ।।

नेहा भारद्वाज

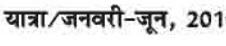

समतावादी विचारक बाबा साहब अम्बेडकर

अमित कुमार रजक

अम्बेडकरवाद धरती पर अवतरित हुआ नया वाद नहीं है, इसकी पृष्ठभूमि तथागत बुद्ध के समतावाद में है। अम्बेडकरवाद को देश में प्रचारित - प्रसारित व स्थापित करने वाले लोगों का कहना है कि हजारों वर्षों से जातियता के नाम से जिनके प्रगति, प्रतिष्ठा और सम्पन्नता के सारे मार्ग अवरुद्ध किए गए और इसके परिणाम स्वरूप देश हजारों सालों से खंडित रहा। वंश की जेष्ठता व धर्म की श्रेष्ठता का वास्ता देकर आज तक देश में 3743 जातियाँ की निर्मित कर देश जाति - उपजातियों में बांट दिया।

बाबा साहब अम्बेडकर के जीवन संघर्ष और उनके साहित्य व दर्शन को देखने से पता चलता है कि दलितों का उनसे बढ़कर कोई हमदर्द नहीं है। उन्होंने जिस वर्ग की लड़ाई अपने हाथों में ली थी, वह पिछले दो हजार वर्षों से अधिक समय से सोया हुआ था। ऐसे मूक और गूंगे समाज का सशक्त नेतृत्व बहुत मुश्किल का काम था। दो हजार सालों से भी ज्यादा समय से जानवरों से भी बदतर स्तर पर ले जाने और गुलाम बनाकर रखने वाली जाति व्यवस्था जो हिंदू सामाजिक परम्पराओं द्वारा स्वीकृत असमानता के सबसे घिनौने संस्थानीकरण का प्रतिनिधित्व करती है। बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों और कार्यों में रेखांकित दृष्टि ने सभी तरह के शोषण से मुक्ति के लिए एक वैज्ञानिक राह दिखाई है। उनकी प्रबल उतकंठा में खोजना होगा। बाबा साहब जब और जहां भी कहीं उन्होंने शोषण महसूस किया वहीं उन्होंने इसके विरूद्ध आवाज बुलन्द की है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन में जाति व्यवस्था को सबसे बड़ा निशाना बनाया। उन्होंने उत्पीड़ितों, यानि अछूतों की जगह पर खड़े होकर जाति व्यवस्था पर हमला बोला। उन्होंने कई लड़ाइयां लड़ी, बाद में इस लड़ाई को सामाजिक आंदोलन से जोड़ते हुए उन्होंने अपने आंदोलन को राजनैतिक रूप दिया। उन्होंने अपने मकसद को कभी भी अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया और बिना थमें उसे हासिल करने के लिए काम करते रहे। उन्होंने दलितों की मुक्ति की समस्या को गहनता से ध्यान देकर बहुत बड़े मकसद के रूप में स्थापित किया। वे इसे इतना बड़ा मानते थे कि उनका जीवन इसके लिए कम था।

इसके बावजूद भी उन्होंने अन्य वंचित तबकों जैसे कि मजदूरों, महिलाओं और किसानों के लिए भी आवाज बुलन्द की। बाबा साहब शोषण के सभी स्वरूपों को समेटते हुए जातिय संघर्षों से भी पार जाकर अपने आंदोलन का विस्तार पाते हैं।

अम्बेडकरवाद यह विश्व की धरती पर अवतरित हुआ नया वाद नहीं है, इसकी पृष्ठभूमि तथागत बुद्ध के समतावाद में है। अम्बेडकरवाद को देश में प्रचारित - प्रसारित व स्थापित करने वाले लोगों का कहना है कि हजारों वर्षों से जातियता के नाम से जिनके प्रगति, प्रतिष्ठा और सम्पन्नता के सारे मार्ग अवरुद्ध किए और इसके परिणाम स्वरूप देश हजारों सालों से खंडित रहा। वंश की जेष्ठता व धर्म की श्रेष्ठता का वास्ता देकर आज तक देश में 3743 जातियों की निर्मित कर देश को जाति-उपजातियों में बांट दिया। डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं- ''जाति के कारण परिवर्तनशीलता रूक जाती है। कभी-कभी ऐसा समय भी आता है, जब समाज को किसी संकटकालीन स्थिति से अपने-आपको बचने के लिए अपने सभी साधन एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाना अनिवार्य हो जाता है।'' (1) क्या जाति के कारण संबल राष्ट्र के निर्माण की पहल हो सकती है? इसी वजह से अम्बेडकरवाद देश की राष्ट्रीयता, अखंडता, सार्वभौमिकता व समृद्धि के लिए जाति व्यवस्था दूर करने की बात करता है ताकि भारत में सामाजिक भाईचारा वृद्धि हो। सभी वर्ग के लोग दलितों अछूतों व सर्वहारा वर्ग को राष्ट्रीय प्रवाह में बराबर साथ में लेकर चले ताकि अंतिम कतार के व्यक्ति को भी अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान का अहसास हो। इस प्रकार जीवन के लिए कई प्रकार के नैतिक गुणों तथा सामाजिक प्रतिमानों के आलावा वैभवशाली व्यवहार, कुशलता के साथ प्रजातांत्रिक भावनाओं की आवश्यकता होती है।

अम्बेडकरवाद कोई अफिम की गोली नहीं जो धर्म का वास्ता देकर अन्य लोगों की धन संपत्ति, अस्मिता और अधिकार को खुले आम लूटने की छूट दे। यह राष्ट्रवाद का बहुचर्चित दर्शन है जहां सभी को अपनी धरोहर, सभ्यता, संस्कृति व सामाजिक मूल्यों को फलने फूलने के समान अवसर की बात करता है। बाबा साहब अम्बेडकर कहते हैं - ''अगर समाजवादी समाजवाद को वास्तविकता में लाना चाहते हैं तो उन्हें यह मानना पड़ेगा कि सामाजिक सुधार बुनियादी जरूरत है और वे इससे भाग नहीं सकतेय कि भारत में पहले से मौजुद सामाजिक व्यवस्था, एक ऐसा मामला है जिससे समाजवादियों को निपटना ही पड़ेगा।'' (2) यह संसार का अभिनव दर्शन है जो एक साथ धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक समानता के तत्वों की प्रभावी वकालत करता है और इसके विरोध में जब-जब स्वर उठते रहेंगे तब-तब देश अशान्ति की ओर बढ़ता रहेगा। क्योंकि राष्ट्रीयता एकता व अखंडता के लिए डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर एक समर्पित पुरूष थे उनकी बौद्ध धम्म दीक्षा उनके प्रखर राष्ट्रवादी होने का सबूत है। बाबा साहब लिखते हैं- ''जाति के विरोध के मामले में बुद्ध ने जो शिक्षा दी, उसी को व्यवहार में भी लाए। उन्होंने वही किया, जिसे आर्यों के समाज ने करने से इंकार कर दिया था। आर्यों के समाज में शूद्र अथवा नीच जाति का मनुष्य कभी ब्राह्मण नहीं बन सकता था। किन्तु बुद्ध ने जातिप्रथा के विरूद्ध केवल प्रचार ही नहीं किया, अपितु शुद्र तथा नीच जाति के लोगों को भिक्षु का दर्जा दिलाया, जिनका बौद्धमत में वही दर्जा है, जो ब्राह्मणवाद में ब्राह्मण का है।'' (3) उनके साथ उस समय सारा समाज उनके इशारे पर संसार का कोई भी धर्म स्वीकार करने के लिए आतुर था। यदि वे अन्य धर्म अपनाए होते तो आज देश कहाँ खड़ा होता? किन्तु एक राष्ट्रभक्त ने इसी माटी के धम्म को और उसके दर्शन को ग्रहण कर इस माटी के साथ केवल कादारी ही नहीं की बल्कि इस माटी के पुत्रों को अपनी भूमिका अहसास भी

कराया। डॉ. अम्बेडकर पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी पर अपने ग्रन्थ 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' में राष्ट्र के साथ वादाखिलाफी करने वाले नेताओं पर जमकर बरसते हैं। वे भाषावार प्रांत रचना के साथ राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी की श्रेष्ठता को खुले मन से स्वीकार करते हैं। वे इसे देश की सरकारी भाषा बनाने का हमेशा समर्थन किए हैं। भारत को लूटने वाले अंग्रेजों की पोल उन्होंने अपने ग्रंथ 'प्रॉब्लम ऑफ रूपी' में खोलकर रख दी। यह सारी घटनाएं, वृतान्त और उनके संघर्षमय जीवन की गाथा राष्ट्रवाद की एक पहल है यह सिद्ध करता है।

गणतांत्रिक भारत का संविधान समता, बंधुता और न्याय के मूल्य को जनन करने का वादा करता है। लेकिन सच्चाई यह है कि आज तक हम राष्ट्रवादी नहीं हो पाए, हमारे राष्ट्र का संपूर्ण परिदृश्य आज भी बदला हुआ है। डॉ. अम्बेडकर मानते हैं - ''किसी समाज में वर्गों का होना स्वतंत्र समाज - व्यवस्था के लिए उतना प्रतिकूल नहीं है, जितना कि पृथ्क्करण और अलगाव की भावना। स्वतंत्र समाज व्यवस्था के अंतर्गत समाज में समरसता की धारा प्रवाहित रहती है। यह केवल तभी संभव है, जब वर्गों को सामान्य हितों, उत्तरदायित्वों में भागीदारी करने का अवसर मिले और सामान्य रूप से जीवन मूल्यों का अधिकार मिले, यदि चारों ओर स्वतंत्र व्यवस्था हो जाए जिसके अंतर्गत लेन-देन के समान अवसर उपलब्ध हो, तो ऐसे समाज संबंधों से रीति रिवाज, मानसिक दृष्टिकोण सजग तथा व्यापक होता है और इसके लिए काल ही नहीं, विचारों की गतिशीलता की आवश्यकता है।'' (4) जातिवादी और धर्मान्ध शक्तियां देश को दीमक की तरह खोखला बना रही है। भ्रष्टाचार ने हमारी सारी अर्थ-व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया है। साम्प्रदायिकता व स्वार्थ का बोलबाला है। प्रान्तीयता और विवाद ने हमारी राष्ट्रीय गोपनीयता की विदेशों में बोली लगाई जा रही है। आतंकवादियों ने देश की प्रभुसत्ता को केवल चुनौती ही नहीं दी बल्कि राष्ट्र की अखंडता को नष्ट करने के लिये विदेशियों से सांठ-गांठ कर ली। आये दिन राष्ट्र नायकों और समाज सुधारकों को अपमानित कर अधिनायकवाद पैदा कर भारतीय मूल्यों का हनन किया जा रहा है। समता और सामाजिक न्याय को भूलाकर पाखंडी, बनावटी राष्ट्रवाद का नारा देकर धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र को धर्मान्धता की आड़ में अधिनायकवाद की ओर धकेला जा रहा है। लोकशाही का नकली मृजग जाल फैला कर जनता को कुछ राजनेताओं ने इस देश की जनता का राजनीतिक बन्धुआ बनाने की कोशिश कर रहें हैं। यह अवस्था दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक वर्ग के लिए भविष्य में उठने वाले तूफान का संकेत है।

संदर्भ-सूची

1. अम्बेडकर डॉ. भीमराव, बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय खंड-6, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 94 2. अम्बेडकर डॉ. भीमराव, जातिभेद का बीजनाश (जातिवाद का उच्छेद), अनुवादक: डॉ. अनिल गजभिये, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 40 3. अम्बेडकर डॉ. भीमराव, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय खंड-7, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 93 4. अम्बेडकर डॉ. भीमराव, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय खंड-6, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 144 अमित कुमार रजक।

अमित कुमार रजक, 523 एस. के. नगर, रिशड़ा, हुगली, पश्चिम बंगाल, पिन कोड –712249
ई–मेल– amitrajak1404@gmail-com, मो. : 7381469636, 9903871069

आते-जाते दिन (डायरी अंश)

राम दरश मिश्र

मैंने अलका सिन्हा से प्लेन के टिकट की व्यवस्था के लिए अनुरोध किया और उनके प्रयत्नों से टिकट की व्यवस्था हो गई। मैंने शिवनारायणजी को फोन से आश्वस्त कर दिया कि मैं आ रहा हूँ। तो 21 की सुबह के प्लेन से पौने नौ बजे पटना पहुँच गया। वहाँ एयरपोर्ट पर शिवनारायणजी तथा कलानाथ मिश्र स्वागत में खड़े थे। मुझे देखकर उन्हें बहुत आश्वस्ति मिली। यानी यह कि मैं सचमुच पटना पहुँच ही गया।

कल पटना से लौटा। इन दिनों सुख-दुख की अजीब यात्रा से गुजरा। 21 अप्रैल को पटना में 'नई धारा' की ओर से प्रथम उदयराजसिंह सम्मान का आयोजन था। इसके मुझे सम्मिलित होना था। साथ ही मुझे उदयराजसिंह स्मारक भाषण माला के क्रम में मैं मानस क्यों पढ़ता हूँ विषय पर व्याख्यान भी देना था। मेरे साथ सरस्वतीजी तथा बेटी स्मिता को भी जाना था-16 अप्रैल को राजधानी एक्सप्रेस से। यात्रा का दिन आ गया। घर से साढ़े तीन बजे निकलना था। तीन बजे हम लोग निकलने की तैयारी कर ही रहे थे कि नोएडा से फोन आ गया कि सचिन (मेरी दौहित्रि अनुमेहा के पति) डिप्रेशन के कारण छत से गिर पड़े हैं। ऑपरेशन हो रहा है। दस मिनट बाद फोन आया कि वे नहीं रहे। हमारे सिर जैसे आसमान टूट पड़ा। पुत्र शशांक और बहू रीता वहाँ पहुँच गए थे। हमारे तो हाथ-पाँव फूल गए। सचिन का प्यारा-प्यारा चेहरा, उसकी सौम्यता, उसकी मेधा, उसकी फोन-वार्ता सभी सामने सजीव हो उठे। वह डिप्रेशन में आकर गिरा है, विश्वास ही नहीं हो रहा था। अच्छी प्रतिमा, अच्छी नौकरी,अच्छी तनख्वाह, अच्छी पत्नी, अच्छी ससुराल सभी तो उसे प्राप्त थे। उसे कौन सी कमी खल रही थी कि वह भीतर-भीतर इतने गहरे अवसाद का शिकार हो गया। बाद में समझदार लोगों से ज्ञात हुआ कि यह डिप्रेशन अपने आप में एक बीमारी है जो बाहरी उत्तेजन के बिना हो जाती है। सीधी'सादी बेटी नेहा की

तकलीफ, उसकी असहायता, उसका क्रंदन मेरी कल्पना मे आ-आकर मुझे कँपाने लगा। हे भगवान यह क्या हो गया? स्मिता अहक-अहककर रोनी लगी। सरस्वतीजी भी मौन और मुखर भाव से रो रही थीं। मैं तो स्तब्ध था। इस स्थिति में यात्रा रद्द करने का निर्णय तो लेना ही था। स्मिता अपने दर्द पर अंकुश लगाकर टिकट वापस करने स्टेशन चली गई। ये लोग तो पटना नहीं जो पाएँगे किंतु मैं क्या करूँ? दर्द यहाँ का तो था ही वहाँ का भी था। पटना का यह समारोह मुझ पर केंद्रित था और सारी तैयारी हो चुकी थी, स्थगित करने का अवसर अब नहीं था। मुझे वहाँ दोहरी भूमिका निभानी थी-सम्मानित भी होना था और व्याख्यान भी देना था। कई लोगों को बाहर से आकर उसमें सम्मिलित होना था। मैंने शिवनारायणीजी (नई धारा के संपादक) को फोन किया और स्थिति की सूचना दी। वे भी दुख ही दुहरी लपेट में आ गए। मेरे दुख से तो दुखी हुए ही, आयोजन की विफलता की आशंका से भी परेशान हो उठे। अत: मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि प्रयत्न करूँगा कि 21 की सुबह को उड़ान से पटना पहुँचू। मेरे इस निर्णय से वे कुछ आश्वस्त हुए।

मैंने अलका सिन्हा से प्लेन के टिकट को व्यवस्था के लिए अनुरोध किया और उनके प्रयत्नों से टिकट की व्यवस्था हो गई। मैंने शिवनारायणजी को फोन से आश्वस्त कर दिया कि मैं आ रहा हूँ। तो 21 की सुबह के प्लेन से पौने नौ बजे पटना पहुँच गया। वहाँ एयरपोर्ट पर शिवनारायणजी तथा कलानाथ मिश्र स्वागत में खड़े थे। मुझे देखकर उन्हें बहुत आश्वस्ति मिली। यानी यह कि मैं सचमुच पटना पहुँच ही गया। वहीं उदयराज बाबू की पुत्री सी.आई.एस.एफ. की इंस्पैक्टर जनरल मंजरीजी भी मिल गई। मुझे सी.आई.एस.एफ. के अतिथिगृह में ठहराया गया। बहुत अच्छा अतिथिगृह है। बगल के कमरे में हरिपाल त्यागी थे। वे भी 'नई धारा' का सम्मान ग्रहण करने के लिए पधारे हुए थे।

ग्यारह बजे हम लोग उदयराज बाबू के भवन सूर्यपुरा हाउस से जाए गए। उनकी धर्मपत्नी शीलाजी का गरिमामय सान्निधय बहुत ही सुखद रहा। उनके भव्य व्यक्तित्व से स्नेह की बारिश-सी हो रही थी। परिवार के और लोग भी आ गए। लगा कि पूरे परिवार के सौम्य आभिजात्य की दीप्ति व्याप्त है। शीलाजी बार-बार मेरे दुख से दुखी होती हुई कृतज्ञता व्यक्त कर रही थीं कि मैं इस मनस्थिति में भी यहाँ आ सका। उनके पुत्र प्रथमराजजी तो सारे कार्यक्रम के पुरोधा ही थे। वे नई धारा के बेहतरी के बारे में बातें करते रहे, सलाह लेते रहे। शिवनारायणजी एवं कलानाथ मिश्र का सान्निघ्य बराबर बना रहा। बीच-बीच में कुछ और लोग आते-जाते रहे।

एक संकट पैदा हो गया था-वह यह कि 21 को ही उपराष्ट्रपति का आगमन हो रहा था और उनकी भी सभा 5 बजे ही थी। लोग चिंतित थे कि एक तो इससे उपस्थिति पर असर पड़ेगा, दूसरे चार बजे के आसपास उस सड़क पर ट्रैफिक रोक दी जाएगी जिससे होकर तारामंडल सभागार (जहाँ हमारा कार्यक्रम आयोजित था) पहुँचना होता है। इस संकट के तहत हम लोगों (मुझे और त्यागीजी) को चार बजे ही तारा मंडल में ले जाकर डाल दिया गया। वहाँ शिवनारायणजी तथा कुछ अन्य लोग भी उपस्थित थे। विधान-परिषद के अध्यक्ष श्री अरूण कुमार मिश्र को कार्यक्रम की

अध्यक्षता करनी थी। सो सबकी चिंता हो रही थी कि पता नहीं वे आएँगे या उपराष्ट्रपति की सभा में जाएँगे। फिलहाल बहुत थोड़ी उपस्थिति को देखते हुए शिवनारायणजी बहुत परेशान हो रहे थे किंतु वे यह भी कह रहे थे कि कोई आए न आए, कार्यक्रम समय से शुरू कर दिया जाएगा। पाँच बजते -बजते श्रोताओं की संख्या संतोषजनक हो गई। अरूण कुमार जी नहीं आए तो उदयराजी की धर्मपत्नी शीलाजी से अध्यक्षता करने का निवेदन किया गया। सवा पाँच बजे कार्यक्रम शुरू हो गया और देखते-देखते पूरा हॉल भर गया। श्रोताओं में सभी स्तरों के लोग थे-सामान्य भी विशिष्ट भी और अति विशिष्ट भी। कुछ औपचारिकताओं के पश्चात मैंने 'मानस क्यों पढता हूँ' विषय पर अपना वक्तव्य दिया। फिर सम्मान-समारोह शुरू हुआ। मेरे अतिरिक्त श्री हरिपाल त्यागी, सिद्वनाथ कुमार एवं श्री राजेश कुमार सम्मानित हुए। डेढ़ घंटे में एक सघन कार्यक्रम संपन्न हो गया। आयोजक लोग बहुत प्रसन्न थे कि उनकी आशंका के विपरीत इतने लोगों की शिरकत हुई। बल्कि बाद में कलानाथजी कर रहे थे कि अच्छा हुआ कि उपराष्ट्रपति का कार्यक्रम इस कार्यक्रम से टकरा गया नही तो बहुत भीड़ हुई होती। पूरा हॉल तो भर गया था शेष लोग कहाँ बैठते, फिर हल्ला-गुल्ला और मार-पीट होती।

22 को पौन तीन बजे प्लेन से लौटना था। दस बजे ही कलानाथजी आ गए और गपशप होती रही। साहित्यिक माहौल की ढेर सारी बातें आती-जाती रही। दरअसल कलानाथजी को चिंता थी कि मैं कमरे मे अकेला न पड़ जाऊँ, इसलिए वे दस बजे ही आ गए थे। वैसे इस यात्रा में पटना के अनेक लोगों का गहरा प्यारा मिला, आत्मीयता मिली किंतु शिवनारायणजी और कलानाथजी तो जैसे मेरे सान्निधय रस में डूब गए थे। एयरपोर्ट पर लेने के समय से लेकर एयरपोर्ट पर लेने के समय से लेकर एयरपोर्ट पर छोड़ने के समय तक उनका प्यार और मेरे लिए सुख-चिंताएँ साथ लगी रहीं। तो बारह बजे के करीब शिवनारायणजी भी आ गए।

दूसरे दिन श्री रामशोभित प्रसाद सिंह ने सिन्हा लाइब्रेरी में एक छोटी-सी साहित्यकार-मिलन-गोष्ठी आयोजित की थी। मैनें अनुभव किया कि रामशोभितजी के मन में मेरे प्रति अद्‌भुत आत्मीय भाव है। उसकी अभिव्यक्ति कई अवसरों पर हुई। घंटो भर की इस गोष्ठी का संचालन शिवनारायणजी ने किया। विभिन्न कवियों ने कविता पाठ किया और साहित्यिक चर्चाएँ भी हुई।

सिन्हा लाइब्रेरी जाने से पूर्व मुझे एक विशेष सुख मिला। वी.एच.यू. में अध्ययन काल के मेरे सहपाठी और परम आत्मीय डॉ. रामचन्द्र मधुप से सैंतालीस साल बाद भेंट हुई थी। मेरे प्रति उनके मन में वही जज्बा वही उल्लास था, वही उमंग थी। मेरी रचनाओं के प्रति उनका वही गहरा

रागात्मक भाव था। वे काफी देर तक मेरे साथ रहे। सिन्हा लाइब्रेरी भी साथ-साथ गए और हमने कुछ घंटो के साहचर्य में वी.एच.यू. के कई वर्ष जी लिए।

शाम को कलानाथजी के यहाँ भोजन का कार्यक्रम था। वहाँ भी काफी देर तक साहित्यिक और पारिवारिक वातावरण में समय हँसता हुआ बीता। खानपान का तो क्रम चलता ही रहा। हरिपाल त्यागी और सिद्धनाथ कुमार का साथ और सुख देता रहा।

22 को पौन तीन बजे प्लेन से लौटना था। दस बजे ही कलानाथजी आ गए और गपशप होती रही। साहित्यिक माहौल की ढेर सारी बातें आती-जाती रही। दरअसल कलानाथजी को चिंता थी कि मैं कमरे मे अकेला न पड़ जाऊँ, इसलिए वे दस बजे ही आ गए थे। वैसे इस यात्रा मैं पटना के अनेक लोगों का गहरा प्यारा मिला, आत्मीयता मिली किंतु शिवनारायणजी और कलानाथजी तो जैसे मेरे सान्निधय रस में डूब गए थे। एयरपोर्ट पर लेने के समय से लेकर एयरपोर्ट पर छोड़ने के समय तक उनका प्यार और मेरे लिए सुख-चिंताएँ साथ लगी रहीं। तो बारह बजे के करीब शिवनारायणजी भी आ गए। फिर हम लोग एक बजे के करीब सुर्यपुरा हाउस होते हुए एयरपोर्ट पहुँचे। पुलिस इंसपेक्टर उभय जी साथ थे। उन्होंने सारी व्यवस्था कर दी। प्लेन विलंब से तो था ही रास्ते में भी विलंब करता गया। यानी उसने पटना से रांची तक की दूरी तीस मिनट की जगह पचास मिनट में और रांची से दिल्ली तक की दूरी डेढ़ घंटे की जगह दो घंटे में तैय की। दिल्ली से पटना जाते समय और आते समय दो घटनाएँ घटीं। जाते समय जब मैंने काउंटर पर कंप्यूटराइज्ड टिकट दिया तब कर्मचारी ने मुझे बोर्डिंग पास देकर टिकट अपने पास रख लिया। जब मैं वहाँ से चला तब लगा कि अरे टिकट तो काउंटर पर ही रह गया। लौटकर गया तो टिकट माँगा। उसने कहा कि टिकट तो मेरा हो गया। मैंने कहा अरे भाई, उस टिकट में पटना से दिल्ली लौटने का भी टिकट शामिल है। तब उसने टिकट का आधा भाग फाड़कर दे दिया। यह आधा भाग वह था जिस में टिकट नहीं, टिकट संबंधी जानकारियाँ लिखी थीं, मैंने कहा- 'अरे भाई इसे लेकर मैं क्या करूँगा। टिकट तो आपके पास ही रह गया'। उसने फिर ध्यान से देखा तो मुझे टिकट वापस कर दिया। मैं बहुत देर तक इस आशंका में दब रहा कि यदि मुझे काउंटर छोड़ने के बाद एकाएक याद न पड़ा होता तो क्या होता? मैं तो कर्मचारी की मूर्खता और अपने भुलक्कड़पन का विकट खामियाजा भोगता।

राम दरश मिश्र, जन्म : 15 अगस्त, 1924 को गोरखपुर (उ० प्र०) जिले के डुमरी गांव में
शिक्षा : एम०ए०, पी–एच०डी०

✧ ✧ ✧

सहज प्रेम का जनगायक-त्रिलोचन

अमित कुमार मिश्रा

अपनी भौजी शीर्षक में त्रिलोचन ने देवर-भाभी के प्रेम का बड़ा ही खूबसूरत वर्णन किया है। घर में नई-नई भौजी आई थी और अपने बालपन में वह नई दुल्हन से बहुत लजाता था, कहीं-न-कहीं भौजी के प्रति हृदय में स्नेह अवश्य था किंतु लज्जा बस न तो उसके पास जा पाता था और न ही भली प्रकार बात ही कर पाता था। इस संकोच को स्वयं भौजी ही तोड़ती है जब वह मुझे दुल्हन कहते हुए मुंह में मिठाई भर देती है। देवर भाभी के हंसी ठिठोली का कितना निर्मल दृश्य है जब देवर के संकोची स्वभाव के कारण नई नवेली दुल्हन खुद देवर को दुल्हन की उपाधि दे बैठती है।

हिंदी साहित्य में त्रिलोचन शास्त्री का नाम आते ही एक ऐसे कवि की छवि उभर आती है जो एक फकीर से मिलती-जुलती होती है। मैं उस जनपद का कवि हूँ जैसी कविता लिखने वाले त्रिलोचन सच में किसी जनपद या ग्रामीण परिवेश के लेखक है।

''त्रिलोचन ने वही लिखा जो कमजोर के पक्ष में था वो मेहनतकश और दबे-कुचले समाज की एक दूर से आती आवाज थे।''१

जनपद का चित्र त्रिलोचन कहीं दूर बैठकर नहीं खींचते बल्कि जनपद में जाकर, रहकर, उसे पूरी सच्चाई से महसूस करके चित्रित करते हैं। यही कारण है कि उनमें मानव जीवन के सभी पक्ष करवट लेते दिख पड़ते है। ''वस्तुत: कवि त्रिलोचन जीवन के विविध पक्षों में समर्थ एवं कुशल चित्रकार हैं जीवन के तमाम सुख-दुख से सजी उनकी कविताएं पाठकों से अपनापन स्वत: स्थापित कर लेती है।''२

किसी मजदूर या किसान के जीवन की समस्याओं को प्रेमचंद ने बखूबी समझा और उस का चित्रण किया है। प्रेमचंद में किसान और मजदूर के प्रेम की झलक भी अवश्य दिख पड़ती है किंतु उनके हृदय की जज्बात कितनी सघन हो सकती है इसका स्पष्ट चित्र हम त्रिलोचन में ही देख पाते हैं। डॉ. सुभाष चंद्र पांडेय ने लिखा है- ''कवि

त्रिलोचन अपने सभी काव्य संग्रहों में समाज में प्रेम एवं सद्भाव को अक्षुण बनाए रखने की बात करते हैं। वस्तुतः प्रेम ही वह तत्व है जिससे समाज में आपसी सामंजस्य मृदुतापूर्ण रहता है।''३

उनकी कविता में एक पत्नी जब अपने पति से, जो प्रदेश रोजी-रोटी की तलाश में गया हुआ है, यह प्रश्न करती है कि 'क्या तुम्हें कभी मेरी याद आती है' तो पति का जवाब है-'इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई'। परदेश जाने के बाद दिनभर का कामकाज पूरे दिन मशीन पर खटना उसके बाद बसेरे पर लौट कर आना, खुद अपने हाथों से रोटियां बनाना और उन्हें कभी साग के साथ तो कभी नमक के साथ खाना, इन सबों के बीच जिंदगी ऐसे गुजरती है कि वह सचमुच अपनी पत्नी के स्नेह को स्मरण करने का अवकाश हो नहीं पाता है। लेकिन इस भाव की खूबसूरती तब और भी बढ़ जाती है जब वह खुद ही स्वीकार कर लेता है कि मैं तुम्हें याद नहीं कर पाता हूँ। कविता की खूबसूरती को भली प्रकार महसूस की जा सके इसलिए मैं कविता कि कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ -

सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ। पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराकर चित्त उचटना।
इस उस पर मन दौड़ना। फिर उठकर रोटी
करना। कभी नमक से कभी साग से खाना।
आरर डाल नौकरी है। यह बिलकुल खोटी
है। इसका कुछ ठीक नहीं है आना जाना।४

यहां बिल्कुल ही स्पष्ट दिख रहा है कि कैसे एक व्यक्ति अपने रोजमर्रा के जीवन में मात्र रोजी-रोटी जुटाने के निमित्त इस कदर व्यस्त हो जाता है कि उसे अपने हृदय के भाव सुनने का अवकाश ही नहीं मिल पाता। लेकिन हृदय के उन निर्मल भावनाओं को कोई सुने न सुने त्रिलोचना जैसा दूरदर्शी कवि अवश्य ही उस भाव को ग्रहण कर लेता है और इतनी खूबसूरती से कविता में ढाल भी देता है।

अपनी भौजी शीर्षक में त्रिलोचन ने देवर-भाभी के प्रेम का बड़ा ही खूबसूरत वर्णन किया है। घर में नई-नई भौजी आई थी और अपने बालपन में वह नई दुल्हन से बहुत लजाता था, कहीं-न-कहीं भौजी के प्रति हृदय में स्नेह अवश्य था किंतु लज्जा बस न तो उसके पास जा पाता था और न ही भली प्रकार बात ही कर पाता था। इस संकोच को स्वयं भौजी ही तोड़ती है जब वह मुझे दुल्हन कहते हुए मुंह में मिठाई भर देती है। देवर भाभी के हंसी ठिठोली का कितना निर्मल दृश्य है जब देवर के संकोची स्वभाव के कारण नई नवेली दुल्हन खुद देवर को दुल्हन की उपाधि दे बैठती है। फिर उन्हें याद आता है कि कामकाज के सिलसिले में गांव छोड़कर शहर जाना पड़ा और वहां के व्यस्त जीवन में यह सारा का सारा मनोरम दृश्य कहीं खो सा जाता है। कहते हैं भौजी

आज नहीं है, जब घर जाता हूँ तो वहां अब ऐसा कोई नहीं दिखता है जो चिरौरी करते हुए पीछे पीछे आए और जिनके कोमल स्नेह को पाकर मानव हृदय उदात्त प्रेम को ग्रहण कर सके। कविता की कुछ पंक्यिां द्रष्टव्य है–

भौजी नई नई आई थी
मैं छोटा था
झेंपू था
मिलने जुलने में सिकुड़ा–सिकुड़ा
लगी गुदगुदाने मन का संकोच धो दिया
देकर दुल्हन नाम मिठाई मुंह में भर दी

भौजी आज नहीं है, जाता हूँ, आता हूँ
पीछा करते कहां किसी को अब पाता हूँ।५

मानवीय प्रेम और खासकर भारत की आत्मा कही जाने वाली ग्राम्य जीवन के उदात्त मानवीय प्रेम का ऐसा सधा हुआ चित्र शायद ही किसी अन्य कवि ने खींचा होगा।

प्रेम का वर्णन करते हुए अनेक कवियों और गीतकारों ने प्रेमी जोड़े को बाग–बगीचों में, सुंदर उपवनों में, बिहार करते हुए न जाने कितने दृश्य प्रस्तुत किए हैं, लेकिन प्रेम को ढूंढने का और उसे प्राप्त करने का त्रिलोचन का जो नजरिया है वह अपने आप में अद्‌भुत और अपूर्व है। त्रिलोचन प्रेम का दृश्य सिर्फ उपवनों में ही नहीं पाते हैं जहां प्रेमी युगल एक दूसरे की बाहों में बाहें डाले उनके भीतर खोए हुए हैं बल्कि वहां भी प्रेम की सुंदर झांकी प्राप्त कर लेते हैं जहां धान या गेहूं के खेत में किसान फसल काट रहे हैं या उसकी रोपाई कर रहे हैं और खेत को एक छोड़ पर पति और दूसरे छोर पर काम करती हुई पत्नी, जब दोनों नजर उठाकर बीच–बीच में एक दूसरे को देख लेते हैं, त्रिलोचन की सुक्ष्म दृष्टि उन दोनों के हृदय के भाव भी तार जाते है। और उस प्रेम की गहराई को समझते हुए वे अपनी कविता का विषय बनाते हैं और खेत खलिहान के उस प्रेम को अपूर्व मानवीय प्रेम के रूप में प्रस्तुत कर देते है। पूरी हिंदी साहित्य बल्कि यू कहा जाए कि विश्व साहित्य को भी खंखाल डाला जाए तब भी प्रेम का वह प्रतिरूप कहीं प्राप्त नहीं होगा जो त्रिलोचन की कविताओं में सहज ही मिल जाया करता है। त्रिलोचन किसानों, मजदूरों और जनपद के कवि हैं जो अपने जनपद के संघर्ष का चित्र खिंचते हैं। उसके दुख का, उसके सुख का, उसकी करूणा का और इस सब के साथ ही उसके अनुपम प्रेम का चित्र खींचकर कविता के माध्यम से उन्हें लोकमानस में फैला देते हैं। मजदूरों–किसानों के इस सहज प्रेम का गायन हिंदी के मूर्धन्य कवियों का मन उमंग से भरता रहा है। निराला को पत्थर तोड़ती मजदूरन को देखकर जो सहज–सितार सुन पड़ता है वह कवि मन के गहराई का सर्वश्रेष्ठ परिचायक है।

सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।'६

मनुष्य जब किसी ऐसे इंसान को अपने प्रेमी या प्रेमिका के रूप में प्राप्त कर लेता है जो कि उसके मन के अनुकूल हो और उसे समझने वाला हो तो वह अपना सर्वस्व उसे समर्पित कर देना चाहता है और वह समर्पण का भाव इस विचार से अभिभूत हो जाता है कि जन्म जन्मांतर तक यही व्यक्ति मेरा जीवन सहचर बना रहे। कवि त्रिलोचन कहते हैं–

पहले पहल तुम्हें जब मैंने देखा
सोचा था
इससे पहले ही
सबसे पहले
क्यों न तुम ही को देखा।७

हृदय की स्वच्छंद अभिलाषा जागृत हो उठती है और वह सोचने लगता है कि जीवन में बहुत पहले ही मैंने उसे प्राप्त क्यों नहीं कर लिया जो मेरे जीवन में सुंदर रंग भरने वाला था।

छायावादी दौर के सजग कवि 'जयशंकर प्रसाद' ने प्रेमिका के छवि का चित्रण करते हुए उसके द्वारा किए जा रहे उपेक्षा की कसक व्यक्त की है। –

'उन्हें अवकाश ही इतना कहां है मुझसे मिलने का
किसी ने पूछ लेते है, यही उपकार करते है।८

तो वहीं उनके परवर्ती कवि त्रिलोचन शास्त्री के मन मंदिर में अनेक भाव हिलकोंरे ले रहे हैं। जीवन की इस नवीनता को कितना आनंदित होकर इतनी सहजता से उनके जैसा कवि महसूस करता है और व्यक्त करता है कि आजकल वह भी मेरे बारे में सोचने लगी है, वह भी मुझे पूछती है, मेरे लिए व्याकुल रहती है। यह भाव के हृदय को भाव–मग्न कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शब्द भले ही कवि के हो भाव, जन–जन के प्रेम प्रवाह को बहा रही है–

मुझे अब बहुत पूछने तुम लगी हो
उधर नींद थी इन दिनों तुम जगी हो।९

और अब अगर जनमानस के इस सच्चे प्रेम के संगीतकार के मुख से यह सुनना चाहें की प्रेम क्या है तो वह अत्यंत ही सहजता से बतलाता है कि जो कुछ बिना मांग प्राप्त हो जाता है, जो बिना बुलाए आपके जीवन में आता है और आपके लिए स्नेह ही निर्मल धारा बह जाता है वही प्रेम है–

बिना बुलाए जो आता है प्यार वही है
प्राणों की धारा उसमें चुपचाप बही है।१०

प्यार की इतनी सुंदर व्याख्या करने वाले कवि प्रेम में पूर्ण समर्पण का भाव आवश्यक मानते है वे खुद के प्रेमी के हो जाने मात्र से संतुष्ट नहीं होते हैं बल्कि उनकी इच्छा है कि मैं केवल

उसी का होकर रहूं, वह कैसा भी हो, किसी भी रूप में रहे मैं केवल उसी का रहूं-

''आज मैं तुम्हारा हूं/बिल्कुल तुम्हारा हूं/केवल तुम्हारा हूं/कहीं राह कोई हो''११

जयशंकर प्रसाद ने कहा है कि प्रेम में प्राप्ति का भाव नहीं होना चाहिए सच्चा प्रेम कुछ पाना नहीं चाहता है बल्कि वह तो अपने प्रेमी को सर्वस्व दे देने में ही संतोष पाता है। यही भाव त्रिलोचन में भी देखने को मिलता है जब वे अपने प्रेमी से अपने हृदय का स्नेह ले लेने को कहते हैं। यहां पाने के बजाय दे का भाव अधिक प्रबल है-

पागल रे! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब।'' जयशकर प्रसाद

''स्नेह मेरे पास है/ लो स्नेह मुझसे लो''-त्रिलोचन

हिंदी साहित्य में त्रिलोचनशास्त्री की समीक्षा प्रगतिवादी कवि के रूप में सदैव ही की जाती रही है किंतु जब हम उनकी कविताओं का सम्यक विवेचन करते हैं तो यह पाते हैं कि जिस तरह घनानंद, जयशंकर प्रसाद और हरिवंश राय बच्चन आदि कि कविताओं में प्रेम की निर्मल धारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार त्रिलोचन शास्त्री की कविता में भी प्रेम के अनेक आयाम है। उनके प्रेम का चित्रण पूर्ववर्ती कवियों से मिन्न जाकर हृदय की निर्मल धारा के साथ-साथ मिट्टी की सुंगध भी अपने आप में समाए हुए है।

''प्रगतिशील धारा के कवि होने के कारण त्रिलोचन मार्क्सवादी चेतना से संपन्न कवि थे, लेकिन इस चेतना का उपयोग उन्होंने अपने ढंग से किया। प्रकट रूप में उनकी कविताएं वामविचारधारा के बारे में उस तरह नहीं कहतीं, जिस तरह नागार्जुन या केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं कहती है। त्रिलोचन के भीतर विचारों को लेकर कोई बड़बोलापन भी नहीं था''१२

हर एक भाषा में विचार को व्यक्त करने के लिए एक लिपि है जो उस भाषा को स्थायित्व प्रदान करता है तब यह कैस संभव है कि प्रेम जैसा भाव जो कि मानव सभ्यता के शुरूआत के साथ ही उत्पन हुआ है और जब तक मानव सभ्यता जीवित रहेगी तब तक भाव भी जीवित रहेगा, उसकी कोई भाषा ना हो, कोई लिपि ना हो। प्रेम की भी अपनी भाषा है जहां बगैर कुछ कहे भी मौन होकर हृदय के भाव व्यक्त किए जा सकते हैं। वहीं प्रेम की लिपि भी मौजूद है जिसे हर कोई देख सके या ना देख सके लेकिन त्रिलोचन जैसा कवि उस लिपि को भली प्रकार जानता भी है, उसे पढ़ता भी है और उसमें प्रम की व्यंजना करने की अद्‌भुत कौशल भी रखता है-

हृदय की लिपि वायु तरंग में
लिख उठी छवि की अरधान सी।१३

मैनेजर पांडेय के शब्दों में- ''उनकी कविता में सामाजिक राजनीतिक घटनाओं का चित्रण वर्णन बहुत कम है मानव जीवन की दशाओं और अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक है''।१४

त्रिलोचन का प्यार बड़ा ही शक्तिशाली वह उन्हें मुश्किल समय में धैर्य बंधता है। वह जीवन से भागने के वजाय उससे लड़ने की शक्ति देता है। उनका प्रेम ही है जो उन्हें संसार के साथ बांधे हुए है आरै उन्हें यह एहसास दिलाता है कि संसार के प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य है। संसार के हर प्राणी से उनका स्वभाविक स्नेह उनके प्रेम के प्रतिरूप में ही झलकता है। उनसे पहले के अनेक कवियों ने सांसारिक कठिनाइयों से टूटकर किसी ऐसे निर्जन में बस जाने की कामना कि थी जहां उन्हें सिर्फ सुंदर दृश्य ही देखने को मिले असुंदर का कहीं नामोनिशान तक न हो। त्रिलोचन को उसका प्रेम संसार से तोड़ने के बजाय और मजबूती से जोड़ देता है-

''मुझे जगत जीवन का प्रेमी/बना रहा है प्यार तुम्हारा।''

कवि अपने प्रेम को पाकर आनंद से बिहवल हो उठते हैं, उन्हें लगता है कि जीवन के लिए प्रेमी का मधुर मुस्कान किसी संजीवनी से कम नहीं है। प्रेम जीवन की व्यथा को भुलाकर एक नए उत्साह के साथ जीवन जीने का प्रेरित करता है। कवि देखते हैं कि अब मैं जहां भी जाता हूं वहां आंखों के आगे प्रिय का स्निग्ध मुस्कान तैरता रहता है। वे अपनी प्रिय से कहते हैं कि तुम्हारी मुस्कान ही मुझे जीवन की ऊर्जा दे रही है। वही है जो मुझे जिलाए हुए हैं। कहीं भी जाता हूं तुम्हारी मुस्कान प्राणवायु बनकर मेरे साथ रहती है। कवि त्रिलोचन का जुड़ाव अपनी माटी से सदैव बना रहा है। वे अपनी कविता के लिए विषय का चयन गांवो-जनपदों से करते हैं, यही कारण है कि उनकी कविताओं में मजदूरों और किसानों को अत्यधिक महत्व मिला है। उनकी कविताओं में व्यक्त प्रेम भी प्रगतिवादी चेतना से संपृक्त है, जो बहुजन-समाज के सहज-प्रेम को उजागर कतरी है। लोचन के प्रेम-वर्णन में मांसलता के स्थान पर सहजता की प्रधानता हिंदी कवियों को नवीन दिशा प्रदान करती है।

संदर्भ :

1. विकिपीडिया, 2. त्रिलोचन शास्त्री के साहित्य में मानवीयता की तलाश, डॉ सुभाष चंद्र पांडे, 3. वहीं, 4. इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई-त्रिलोचन, 5. भौजी-त्रिलोचन, 6. तोड़ती पत्थर, निराला, 7. तुम्हें जब मैंने देखा-त्रिलोचल, 8. सरासर भूल करते हैं, गजल-जयशंकर प्रसाद, 9. न जाने हुई बात क्या, त्रिलोचन, 10. प्यार, त्रिलोचन, 11. तुम्हें सोचता हूं, त्रिलोचन, 12. विकिपीडिया, 13. हृदय की लिपि, त्रिलोचन, 14. परंपरा और आधुनिकता का स्वर-सेतु: त्रिलोचन, महावीर, अग्रवाल।

अमित कुमार मिश्रा, शोधार्थी, हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
संपर्क :– 9304302308, ई–मेल : amitraju532@gmail.com

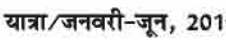

मनोहर का जवाहर पक्ष

डॉ. विजय प्रकाश

इंग्लैंड में जब लेबर पार्टी की सरकार बनी तो उसने भारत को जल्दी से जल्दी स्वतंत्रता देने का इरादा व्यक्त किया। ब्रिटिश सरकार से होनेवाली बातचीत के मद्देनजर काँग्रेस का अध्यक्ष पद मौलाना आजाद से लेकर जवाहरलाल नेहरू को दे दिया गया। नेहरू ने जून 1946 में लोहिया को काँग्रेस के महामंत्री के पद को संभालने का न्योता दिया। (लोहिया तब महात्मा गाँधी के ब्रिटिश सरकार से विशेष अनुरोध पर लाहौर किले के दो वर्षों के भीषण यातनामय कारावास से रिहा होकर बाहर आए थे।) राममनोहर ने जवाहरलाल के सामने काँग्रेस के महामंत्री के पद को स्वीकारने के लिए शर्त रखी कि काँग्रेस अध्यक्ष मंत्रिपरिषद् के सदस्य या प्रधानमंत्री नहीं बनेंगे और न मंत्रिपरिषद् के सदस्य (केन्द्रीय या प्रादेशिक) कार्यकारी समिति के सदस्य होंगे।

डॉ. राममनोहर लोहिया इस बात को स्वयं स्वीकार करते थे कि उन पर दो नेताओं का गहरा प्रभाव पड़ा- एक महात्मा गाँधी और दूसरे जवाहरलाल नेहरू। लेकिन 1947 के बाद जब पंडित नेहरू से उनका मोहभंग हुआ तो उन्होंने अपनी आत्मस्वीकृति में सुधार किया और कहने लगे कि उन पर डेढ़ व्यक्तियों का प्रभाव रहा, एक गाँधी और आधा नेहरू। (ध्यातव्य है कि यहाँ भी डॉ. लोहिया नेहरू को नकार नहीं सके बल्कि आधा स्वीकार ही किया।)

महात्मा गाँधी से लोहिया की जब पहली मुलाकात हुई तब उनकी उम्र 13-14 वर्ष से अधिक नहीं रही होगी। वह मारवाड़ी विद्यालय, मुंबई के विद्यार्थी थे। उनके पिता हीरा लाल, जो लोहे का कारोबार करते थे, (जिस वजह से उनके परिवार के साथ 'लोहिया' शब्द जुड़ गया था) स्वयं उन्हें गाँधी जी से मिलवाने ले गये थे। हीरा लाल वस्तुतः उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले (ग्राम अकबरपुर) के रहने वाले थे लेकिन कारोबार के उद्देश्य से तब वह मुंबई में रहने लगे थे और राम मनोहर का दाखिला वहीं के एक प्रसिद्ध विद्यालय मारवाड़ी स्कूल में करवा दिया था। वह स्वयं गाँधी तथा उनके कार्यक्रमों से प्रभावित थे।

जवाहरलाल से लोहिया की पहली मुलाकात कलकत्ते में हुई। उनके पिता, हीरा लाल तब कलकत्ते में रहने लगे थे और राम मनोहर ने इण्टरमीडिएट की परीक्षा पास कर स्थानीय विद्यासागर महाविद्यालय में दाखिला ले लिया था। यहाँ वे काँग्रेस के अखिल भारतीय विद्यार्थी संगठन के सदस्य और कार्यकर्त्ता हो गये। जवाहरलाल जी ने प्रथम दर्शन में ही उन पर जादू-सा असर डाला और वे उन्हें अपना आदर्श समझने लगे।

जवाहरलाल नेहरू स्वयं भी डॉ. लोहिया को पसंद करते थे। वह उनमें एक तेजस्वी नेता के सारे गुण देखते थे। वह आधुनिक और उच्च शिक्षा प्राप्त थे। उन्होंने जर्मनी में टंबोल्ट विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। वहाँ उन्होंने सोशल डेमोक्रेट, नाजी तथा कम्यूनिस्ट पार्टियों के सानिध्य का अनुभव प्राप्त किया था। उन्हें विश्व राजनीति की समसामयिक गतिविधियों की समझ थी। वे नेहरू की ही भाँति अखबारों में प्रासंगिक और बौधिक लेख लिखते थे तथा प्रभावशाली भाषण करते थे। वे अपनी बातें तर्कपूर्ण ढ़ंग से समझाने और दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता रखते थे। फलत: 1936 में जवाहरलाल जब काँग्रेस के अध्यक्ष बने तो उन्होंने राममनोहर को काँग्रेस का विदेश विभाग संभालने का आग्रह किया। (पाठक याद करेंगे कि नेहरू की पहली मुलाकात जब जयप्रकाश से हुई थी तो उनकी पारखी नजरों ने जेपी की अद्‌भूत संगठन क्षमता को भाँप लिया था और उन्होंने उन्हें काँग्रेस के श्रमिक प्रकोष्ठ का कार्य सौंप दिया था।) लोहिया ने पंडित नेहरू का आमंत्रण सहर्ष स्वीकार किया और आनन्द भवन में रह कर काम करने लगे। इस दौरान उन्होंने काँग्रेस के विदेश विभाग के लिए कई महत्त्वपूर्ण रपटें और दस्तावेज तैयार किये। उन्होंने इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस आदि देशों की लोकतांत्रिक प्रणालियों का गहरा विश्लेषण किया। गुटनिरपेक्षता की नीति का प्रारूप भी उन्हीं के समय में बना। डॉ. लोहिया ने गुटनिरपेक्षता की नीति की रूप रेखा एक पुस्तिका में रखी, जिसकी भूमिका स्वयं जवाहरलाल नेहरू ने लिखी थी। इस आलेख में यह प्रतिपादित किया गया था कि 'एशिया और अफ्रीका के देशों को चाहिए कि वे नयी विश्वव्यवस्था को कायम करने के लिए नाजीवाद और साम्राज्यवाद के आपसी संघर्ष से अलग रह कर अपनी तीसरी शक्ति का गठन करें।'

बाद में जब काँग्रेस पार्टी ने यह निर्णय लिया कि काँग्रेस सोसलिस्ट पार्टी का कोई सदस्य अखिल भारतीय काँग्रेस पार्टी में किसी अधिकारवाले पद पर नहीं रह सकता तो लोहिया को इस पद से तुरत इस्तीफा देना पड़ा।

इंग्लैंड में जब लेबर पार्टी की सरकार बनी तो उसने भारत को जल्दी से जल्दी स्वतंत्रता देने का इरादा व्यक्त किया। ब्रिटिश सरकार से होनेवाली बातचीत के मद्देनजर काँग्रेस का अध्यक्ष पद मौलाना आजाद से लेकर जवाहरलाल नेहरू को दे दिया गया। नेहरू ने जून 1946 में लोहिया को काँग्रेस के महामंत्री के पद को संभालने का न्योता दिया। (लोहिया तब महात्मा गाँधी के ब्रिटिश सरकार से विशेष अनुरोध पर लाहौर किले के दो वर्षों के भीषण यातनामय कारावास से रिहा होकर बाहर आए थे।) राममनोहर ने जवाहरलाल के सामने काँग्रेस के महामंत्री के पद को स्वीकारने के लिए शर्त रखी कि काँग्रेस अध्यक्ष मंत्रिपरिषद् के सदस्य या प्रधानमंत्री नहीं बनेंगे और न मंत्रिपरिषद् के सदस्य (केन्द्रीय या प्रादेशिक) कार्यकारी समिति के सदस्य होंगे। स्पष्ट था नेहरू के लिए इस शर्त को मानना संभव नहीं था और परिणामत: बातचीत टूट गयी। विदित हो कि काँग्रेस पार्टी को ये समाजवादी (कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी के सदस्य) पार्टी के भीतर पार्टी बनाने के कारण फूटी आँखों नहीं सुहाते थे। वहाँ सिर्फ नेहरू ही थे जो ऐसी पेशकश करते थे। उन्होंने जयप्रकाश के सामने भी ऐसी पेशकश रखी थी। क्योंकि अनेक बिन्दुओं पर असहमत होते हुए भी लोहिया और जयप्रकाश जैसे नेताओं का महत्त्व बखूबी समझते थे और वे उनसे राष्ट्रहित में आगे बढ़कर काम लेना चाहते थे।

लोहिया आराम करने के ध्येय से अपने मित्र डॉ. मेनेजिस के पास गोवा गये। गोवा में पुर्तगालियों का शासन था और नागरिकों पर उनका दमनचक्र जारी था। जुलूस, प्रेस, धार्मिक उत्सव, विवाह आदि पर कठोर पाबंदियाँ लगी हुई थीं। लोहिया ने यह सब देखा तो आराम करना भूल गये और गोवा के राष्ट्रवादी

नेताओं को साथ लेकर सत्याग्रह चलाया। उन्हें गिरफ्तार करके भारतीय सीमा पर छोड़ दिया गया। उन्होंने चुनौती दी कि तीन महीने के भीतर गोवा के निवासियों को नागरिक स्वतंत्रता नहीं दी गयी तो वे फिर गोवा में प्रवेश करेंगे। उस समय दिल्ली में काँग्रेस और मुस्लिम लीग की मिली-जुली अंतरिम सरकार काम कर रही थी। जवाहरलाल प्रधानमंत्री थे। उन्होंने कहा, ''गोवा तो भारत के गाल पर छोटा-सा मुंहासा है, जिसे आसानी से निकाला जा सकता है। इसके लिए आंदोलन करने की जरूरत नहीं है।'' गाँधी जी ने लोहिया का समर्थन किया लेकिन नोआखाली के संप्रदायिक दंगों की आग बुझाने अपनी शांति-यात्रा पर जाते हुए उन्होंने लोहिया को सलाह दी, 'अंतरिम सरकार में मुस्लिम लीग द्वारा खड़ी की जा रही बाधाओं को देखते हुए सरकार की दिक्कतों को न बढ़ाएं और गोवा का आंदोलन फिलहाल स्थगित कर दें।' लोहिया ने निराश होकर गोवावासियों से अपील की, ''चूँकि गाँधी जी और जवाहरलाल जी को मेरा गोवा आंदोलन में उतरना पसंद नहीं है अत: भले ही मैं न आऊँ, आप अपना आंदोलन जारी रखें।''

जून 1947 में माउण्टबेटेन के भारत विभाजन योजना पर विचार करने के लिए काँग्रेस कार्यकारिणी की बैठक दिल्ली में हुई, जिसमें विशिष्ट आमंत्रित व्यक्ति के रूप में लोहिया और जयप्रकाश ने हिस्सा लिया। दोनों ने विभाजन का विरोध किया। जबकि महात्मा गाँधी और खान अब्दुल गफ्फार खाँ को छोड़ कर कार्यकारिणी के सभी सदस्यों ने विभाजन के पक्ष में मतदान किया। अपनी पुस्तक 'भारत विभाजन के गुनहगार' में लोहिया लिखते हैं कि गाँधी ने नेहरू और पटेल से शिकायत की कि उन्होंने विभाजन की योजना को स्वीकार करने के पहले उन्हें सूचित नहीं किया तो नेहरू ने गाँधी की बात का प्रतिवाद किया। जब गाँधी ने फिर अपनी बात दोहराई तो नेहरू ने दिल्ली और नोआखाली के बीच लंबी दूरी का कारण बताया। 'इस बैठक में नेहरू व पटेल गाँधी जी के प्रति आक्रामक रोष दिखाते रहे। उन दोनों के साथ मेरी कई तीखी झड़पे भी हुई।' गाँधी जी के लिए ये अत्यन्त निराशा और व्यथा के दिन थे। ऐसी मन:स्थिति में वे लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य नरेन्द्र देव आदि समाजवादी नेताओं के बहुत करीब आ गये थे।

गाँधी से लोहिया की निकटता जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल को सशंकित करने लगी थी। एक बार एक खुफिया रिपोर्ट के आधार पर सरदार पटेल ने गाँधी जी को बताया कि कोई नेता भूमिगत आंदोलन के माध्यम से सरकार के तख्तापलट की योजना बना रहा है। शक की सूई लोहिया पर जा रही थी। गाँधी ने लोहिया से पूछा कि क्या सचमुच तुम नेहरू-पटेल को खत्म कर देना चाहते हो। लोहिया भौंचक रह गये। स्वयं को संयत करते हुए उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा, बापू, यह सरासर पागलपन और मूर्खता है। 42 के आंदोलन में मैंने मनुष्य-हत्या का विरोध किया था। मेरी पार्टी की यह स्पष्ट राय है कि वर्त्तमान सरकार नालायक, बुद्धिहीन और निकम्मी है लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि हम हिंसाचार के रास्ते या भूमिगत आंदोलन के रास्ते उसे खत्म करना चाहते हैं। इस पर गाँधी जी ने सुझाव दिया कि यही बात लिख कर सरदार पटेल को दे दो। लोहिया को ऐसा करना अपमानजनक लगा और उन्होंने इससे इनकार कर दिया। तब गाँधी ने कहा, 'अच्छा, मुझे लिख कर दे दो।' लोहिया ने वैसा ही किया।... गाँधी के प्रति लोहिया का तीव्र आकर्षण उनके निर्मल हृदय के कारण था। वह उन्हें मानवता के नवीन मसीहा के रूप में देखते थे। जयप्रकाश नारायण और अशोक मेहता जैसे अपने साथियों के विपरीत विचारों के बावजूद शायद गाँधी की उपस्थिति के कारण ही वह काँग्रेस में बने रहने के हामिल थे। लेकिन गाँधी की हत्या के पश्चात् काँग्रेस के प्रति उनका मोह पूरी तरह टूट गया।

1949 में नेपाल में राणाशाही के विरुद्ध विश्वेश्वर कोइराला के नेपाल काँग्रेस के आंदोलन के समर्थन में दिल्ली में लोहिया के नेतृत्व में एक जुलूस नेपाल के राजदूत को अपनी मांगों का ज्ञापन देने

दूतावास गया। धारा 144 के उल्लंघन में लोहिया को उनके 46 साथियों के साथ गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। स्वतंत्र भारत में लोहिया की यह पहली जेल यात्रा थी। उन्होंने प्रतिक्रिया दी, ''स्टालिन ने भी अपने सहयोगियों पर इतनी जल्दी हाथ नहीं उठाया होगा।'' नेहरू ने जेल में उनके लिए आम की टोकरी भेजवाई, लोहिया ने इसे वापस कर दिया।

1963 में डॉ. लोहिया पहली बार (फर्रूखाबाद से लोकसभा का उपचुनाव जीत कर) संसद में पहुँचे। एक अंग्रेजी अखबार ने टिपण्णी की, ''चीनीमिटी के बर्तनों की दुकान में सांढ़ घुस आया है।'' अभी तक लोकसभा में बस भली-भली बातें होती थीं- सरकार की कोई तीखी आलोचना नहीं, कोई आक्रोश नहीं। देश की सबसे बड़ी पंचायत आज्ञाकारी बालकों की कक्षा की तरह चलती थी। लोहिया के प्रवेश के साथ नजारा बदल गया। बारह-तेरह वर्षों के नेहरू सरकार के विरुद्ध (आचार्य कृपलानी द्वारा) पहली बार अविश्वास प्रस्ताव रखा गया। अखबारों ने मजाक उड़ाया कि नेहरू की भारी बहुमत वाली सरकार का इससे क्या होगा। लेकिन डॉ. लोहिया ने इसके पक्ष में जब अपना पहला भाषण दिया (जो लगभग आठ घंटे चला। जब अध्यक्ष की ओर से समय समाप्त होने का संकेत होता तो दूसरे सदस्य उन्हें अपना समय दे देते) तो सारा माहौल बदल गया। उन्होंने कहा, ''यह सरकार परिणामहीन लफ्फाजी से अपना काम चला रही है। यहाँ 27 करोड़ आदमी तीन आने रोज के खर्च पर जिंदगी निर्वाह करते हैं जब कि प्रधानमंत्री के कुत्ते पर तीन रुपया रोज खर्च होता है। पचास लाख बड़े लोगों ने इनकी नकल करते हुए आम हिन्दुस्तान को बर्वाद कर दिया है। पचास लाख बड़े लोग डेढ़ अरब रुपये की राष्ट्रीय आमदनी में से 50 करोड़ रुपये हजम कर लेते है।'' चीनी आक्रमण और भारत की हार का जिक्र करते हुए लोहिया ने कहा, ''12 अक्टूबर को प्रधानमंत्री ने कहा कि चीनियों को खदेड़ बाहर करो, यह शेर की दहाड़ थी लेकिन 37 दिन बाद 19 नवम्बर को जब बोमडीला और बालोंग गिर गए तब रेडियो पर उन्होंने भाषण दिया तो उनकी घिग्घी बंधी हुई थी। वह बकरी की पुकार थी।'' डॉ. लोहिया ने नेहरू की सरकार को जातिपरस्त और कुनवापरस्त सरकार बताया। इस संदर्भ में उन्होंने नेहरू के एक रिश्तेदार सेनापति का नाम लिया जिसे उर्वशीयम में अधिकारी बना कर भेजा गया था और जिसने चीनी हमले से पहले ही बोमडीला खाली कर दिया और दिल्ली भाग आया।

सारांशत: डॉ. लोहिया के संसद-प्रवेश से लोकसभा प्राणवान और जीवंत संस्था बनी, जिसमें करोड़ों की संख्या में शोषित-पीड़ित जनता की आवाज गुँजने लगी। लेकिन ध्यान देने की बात है कि तब सदन में सत्तापक्ष और प्रतिपक्ष के बीच इतनी कठोर आलोचना-प्रत्यालोचना के बावजूद वैयक्तिक मर्यादा बनी रहती थी, सौहार्द्र बना रहता था और आपसी कटुता की गुँजाइश नहीं रहती थी। यह भारतीय संसदीय राजनीति का स्वर्णिम काल था। यही कारण है कि जब डॉ. लोहिया अपने आखरी दिनों में दिल्ली के विलिंगटन अस्पताल (आज के राममनोहर लोहिया अस्पताल) में भर्त्ती हुई प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी बिला नागा रोज सुबह-शाम उन्हें देखने जाती थीं और उनके निधन पर तमाम मंत्रियों ने उन्हें कंधा दिया।

डॉ. विजय प्रकाश, मंत्रिमंडल सचिवालय (राजभाषा) विभाग, सी/311, ऑफिसर्स हॉस्टल (बिहार म्यूजियम के सामने), बेली रोड, पटना-800 001, मो.- 07061265894

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा द्वारा राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

श्रीमती माधुरी बाजपेयी

गत 9 मार्च को 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' मुंबई द्वारा हिन्दी कथा-साहित्य पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ। संगोष्ठी का विषय था हिन्दी कथा-साहित्य के विविध आयाम। सुश्री छाया गांगुली द्वारा सरस्वती वंदना से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। सभा की विशेष कार्य अधिकारी डॉ. सुशीला गुप्ता ने कथा-साहित्य के स्वरूप और वर्तमान संदर्भ में आए बदलाव पर उद्घाटन सत्र में अपना सारगर्भित बीज वक्तव्य दिया। उन्होंने विविध कहानीकारों के विचार उद्धृत करते हुए हिन्दी कथा-साहित्य में प्रतिष्ठित लेखकों की कहानियों का उल्लेख भी किया। समारोह की अध्यक्षता करते हुए सभा के ट्रस्टी व मानद सचिव श्री फिरोज पैच जी ने कहानियों के महत्त्व को रेखांकित किया कि जीवन में कहानियाँ बहुत महत्त्व रखती हैं विशेषकर बच्चों के मन पर बहुत ही गहरा असर डालती हैं। अतः मानवता रूपी धर्म की महत्ता बनाने वाली, बच्चों को सही-गलत का ज्ञान कराने वाली, देश हित में कहानी की रचना होनी चाहिए। वर्तमान संदर्भ का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि आज कथा-जगत् को सामाजिक विसंगतियों को दूर करने वाले कथा-साहित्य की जरूरत है। सभा के निदेशक (कार्यक्रम) श्री संजीव निगम ने जीवन में विभिन्न कथाओं का महत्त्व बतलाते हुए उद्घाटन सत्र का संचालन किया और कार्यक्रम की प्रस्तावना प्रस्तुत की। हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के ट्रस्टी व कोषाध्यक्ष श्री अरविन्द डेगवेकर ने आभार प्रदर्शित किया।

इसी सत्र में सुश्री ममता कालिया ने शोध छात्रों के संबंध में कहा कि पढ़ने की संस्कृति नष्ट नहीं हो रही, बल्कि अलग-अलग रूपों में बढ़ रही है, जैसे कि ब्लॉग, आलेख, धारावाहिक क्रम के रूप में। कथ्य कहानी का प्राण होता है। स्मृति के साथ कल्पना का होना भी आवश्यक है। उन्होंने पारसी कहानी टॉवर ऑफ साइलेंस का उदाहरण देते हुए कहानी को विलुप्त हो रही संस्कृति की कहानी बतलाते हुए कहा कि साहित्य मात्र सूचनाओं का विवरण नहीं होता, बल्कि युगबोध का वाहक भी होता है।

डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी ने अपने वक्तव्य में कहा कि वर्तमान कथा-साहित्य माँग और पूर्ति के आधार पर लिखा जा रहा है, जो कि पाठकों के लिए हानिकारक है, वास्तविकता से दूर ले जाने वाला है। साथ ही साहित्य का विकास भी उपलब्धता के आधार पर होता है। विशेष रूप से उत्तर भारत में साहित्य आसानी से उपलब्ध नहीं है। साहित्य का प्रमोशन भी बाजार के नियमानुसार होना चाहिए। साहित्य कोश बाजार में लाने के लिए व्यावसायिकता अपनानी होगी, तभी उसका प्रचार-प्रसार होगा। स्त्रियों के लिए उपन्यास पढ़ना क्यों आवश्यक है, इस बात पर बल देते हुए उन्होंने नामवर सिंह एवं डॉ. रामविलास शर्मा का उल्लेख करते हुए कहा कि उपन्यास व कहानी को अलग-अलग खेमों में बाँटने वाली स्थिति यह है कि हम सब वास्तव से दूर एक काल्पनिक दुनिया में जी रहे हैं, जबकि अधिकाधिक पठन ही (चाहे वह उपयोगी हो या अनुपयोगी) व्यक्ति और समाज को आगे ले जाने में हितकारी होता है। अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति का हवाला दिया। पश्चिमी देशों में उपन्यास ने भारी प्रभाव डाला, जनमानस को प्रभावित किया, क्योंकि उपन्यास की आंतरिक विशेषता ही है कि जहाँ रहता है, वहाँ एक क्रांति उत्पन्न होती है। इसका कोई नियम नहीं। वह समाज में तहलका मचाने में समर्थ है। आज आवश्यकता है अनुभूति और स्मृति को बचाने की। यथार्थ और वर्तमान का सामंजस्य बनाने की। साहित्य की दुनिया में एक झूठी अनुभूति आई है इससे बचने की जरूरत है। साहित्यकारों के सामाजिक हितों का ध्यान रखने की साहित्य-लेखक और पाठक दोनों की जिम्मेदारी है। अतः सांस्कृतिक उहापोह से बचने की जरूरत है।

इसी सत्र में सुश्री ममता कालिया ने शोध छात्रों के संबंध में कहा कि पढ़ने की संस्कृति नष्ट नहीं हो रही, बल्कि अलग-अलग रूपों में बढ़ रही है, जैसे कि ब्लॉग, आलेख, धारावाहिक क्रम के रूप में। कथ्य कहानी का प्राण होता है। स्मृति के साथ कल्पना का होना भी आवश्यक है। उन्होंने पारसी कहानी टॉवर ऑफ साइलेंस का उदाहरण देते हुए कहानी को विलुप्त हो रही संस्कृति की कहानी बतलाते हुए कहा कि साहित्य मात्र सूचनाओं का विवरण नहीं होता, बल्कि युगबोध का वाहक भी होता है।

प्रमुख लेखिका सुश्री सुधा अरोड़ा के अनुसार लेखन व्यवसाय नहीं है, सुखद तो बिलकुल नहीं और हिन्दी का लेखन रोजी-रोटी के लिए बिलकुल नहीं। लेखन अभिव्यक्ति का माध्यम है, पर उसका समयानुकूल होना भी आवश्यक है। आज के कथा-साहित्य के स्वरूप को बदलने में संचार माध्यमों और बदलते प्रतिमानों की प्रमुख भूमिका है। आत्मकथा भी निर्मित न होकर सीधा बयान होता है। उन्होंने नारीवादी चेतना पर आधारित लेखों का संकलन एक औरत की नोट बुक और मराठी भाषा के उपन्यास और आत्मकथाओं का उल्लेख करते हुए दया पवार, मल्लिका, अमर शेख जैसे मराठी के लेखकों के विषय में कहते हुए बतलाया कि जनमानस पर फर्क सिर्फ उपन्यासों से नहीं, बल्कि अन्य रचनाओं से भी पड़ता है। इसी सत्र में हिन्दुस्तानी प्रचार सभा द्वारा संचालित सरल हिन्दी कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा कथा-कथन शैली में ममता कालिया की कहानी परदेसी का प्रस्तुतीकरण किया।

भोजनावकाश उपरांत संगोष्ठी के द्वितीय सत्र में मुंबई विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय ने भाषा-शिल्प की अनुकूलता पर अपने विचार रखे। उन्होंने कहा साहित्यिक विधा भाषा संरचना ही है। साहित्यकार भाषिक कौशल्य के साथ अपने जीवन के अनुभव और परिवेश के अनुरूप लिखता है। हाँ, रचनाकार अपने समयानुकूल शिल्प की रचना करता है। वर्तमान समय में लेखक के सामने तमाम चुनौतियाँ हैं। वैश्वीकरण के चलते हिन्दी का कथाकार भी प्रभावित है। हर विधा का अपना प्रभाव होता है। आज भी समस्याएँ प्रेमचंद के जमाने से कम नहीं है, सिर्फ उनका स्वरूप बदला है। उन पर भी लिखा जाना चाहिए। रचना के मूल्यांकन की चुनौती आज लेखन क्षेत्र में बहुसंख्या की वजह से बढ़ी है। हर रचनाकार का अन्दाजे बयाँ अपना होता है। पहले के उपन्यासों के पात्र आज रचनाकार के रूप में हमारे सामने हैं। लेखन के धारातल पर वैविध्य साहित्य में संपन्नता तो ला रहा है, पर इसके कुछ खतरे भी हैं। उपन्यास का कथ्य घटता जा रहा है और शिल्प जबरदस्ती थोपे जा रहे हैं, जिससे कथनीयता गायब हो रही है।

सुश्री मधु कांकरिया ने आदिवासी जीवन की झाँकी प्रस्तुत की। उन्होंने कहा आदिवासी अर्थात् पहला मूल निवासी। आदिवासी समाज आदि धर्म का पालन करता है, न कि मन्दिर और मूर्ति पूजा करने में विश्वास। वह प्रकृति का पूजक होता है, स्वयं को धरती का पुत्र मानता है। आदिवासियों में मातृ सत्तात्मक परिवार होते हैं और पराक्रम पूज्य होते हैं और महिलाएँ भी सुरक्षित होती हैं। उनके समाज में शौर्य और पराक्रम पूज्य होते हैं। आदिवासी समाज शहर को बहुत कुछ देता है, पर शहर से लेता कुछ नहीं। सरकारी कार्यक्रम भी आदिवासियों को कुछ नहीं देते। आदिवासी जीवन का उन्होंने स्वयं उनके इलाकों में जाकर अध्ययन किया है।

भारतीय संस्कृति में शिवत्त्व का भाव है और रचनाकार का दायित्त्व है कि उसकी रक्षा करे। आज भाषा और विचार धारा के नाम पर सतर्क रहने की आवश्यकता है। स्त्री-विमर्श भी चिन्ता का, सतर्क रहने का विषय है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भी जस-का-तस लेना उचित नहीं, जो हमारे लिए ग्रहणीय है, उसे ही लेना चाहिए। आगामी युग में नये प्रयोग होंगे ही।

साहित्य की पठनीयता पर बोलते हुए डॉ. सूर्यबाला ने कहा कि लेखक जितना संवेदनशील होता है, उतना ही पाठक भी। कुछ पाठक तो अतिरिक्त अर्थबोध से ग्रस्त होते हैं। हर पाठक अपनी समझ व पैठ के साथ रचना को समझता है। इस संदर्भ में उन्होंने अपनी हाल ही में प्रकाशित वेणु की डायरी का उदाहरण दिया कि उन्हें इस पुस्तक के विषय में विभिन्न पाठकों की अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ मिलीं। उनके अनुसार वर्तमान साहित्यिक परिवेश में विशुद्ध पाठक उपलब्ध नहीं हैं। जिन्दगी की रफ्तार तेज हो गई है, जिसके लिए संचार माध्यम भी काफी हद तक

जिम्मेदार है। कहानियों में रोचकता, जिज्ञासा और कौतूहल को बनाए रखना लेखक की जिम्मेदारी है। विभिन्न वाद, विमर्श और आन्दोलन साहित्य को ज्यादा कुछ नहीं देते। पठनीयता भी आज चुनौती बन गई है। लेखक की जिम्मेदारी है कि वह अपनी उस भाव-भूमि तक पाठक को ले जाए, जहाँ पर वह स्वयं है। आज जीवन में नई-नई चुनौतियाँ आ रही हैं, इस तरफ भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

माटी की सुगंध पर बोलते हुए डॉ. प्रोफेसर कलानाथ मिश्र ने कहा कि रचनाओं में मौलिकता आवश्यक है। जितनी कृत्रिमता होगी पाठक उतना ही दूर जाएगा। कल्पना हो, पर यथार्थ की झलक का होना आवश्यक है। हर रचना हर पाठक के लिए नहीं होती। रचनाकार स्वयं के क्षणों में उसे जीते हैं, पाठक रचना के रूप में पठन के क्षणों में उसे जीते हैं। रचनाकार दिलों में झाँकता है, परिवेश को महसूस कर मानो परकाया प्रवेश करता है, पर महत्त्व इस बात का होता है कि संवेदनाएँ कहाँ तक एकाकार होती हैं। ठीक इसी प्रकार शब्दों के प्रयोग एवं अर्थग्रहण की क्षमता से परिपूर्ण भाषा रचना को प्रभावोत्पादक बनाती है। लेखक जीवन के अलग-अलग आयामों के परिप्रेक्ष्य में अलग-अलग रूप से लिखते हैं, पर निर्णायक पाठक ही होता है। उन्होंने अनेक उदाहरण देकर यह तथ्य स्थापित किया कि माटी की सुगंध वाली रचनाएँ ही कालजयी होती हैं।

सुश्री मधु कांकरिया ने आदिवासी जीवन की झाँकी प्रस्तुत की। उन्होंने कहा आदिवासी अर्थात् पहला मूल निवासी। आदिवासी समाज आदि धर्म का पालन करता है, न कि मन्दिर और मूर्ति पूजा करने में विश्वास। वह प्रकृति का पूजक होता है, स्वयं को धरती का पुत्र मानता है। आदिवासियों में मातृ सत्तात्मक परिवार होते हैं और पराक्रम पूज्य होते हैं और महिलाएँ भी सुरक्षित होती हैं। उनके समाज में शौर्य और पराक्रम पूज्य होते हैं। आदिवासी समाज शहर को बहुत कुछ देता है, पर शहर से लेता कुछ नहीं। सरकारी कार्यक्रम भी आदिवासियों को कुछ नहीं देते। आदिवासी जीवन का उन्होंने स्वयं उनके इलाकों में जाकर अध्ययन किया है और उनकी समस्याओं को समझा है। उन्होंने अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर उनकी समस्याओं को रेखांकित करते हुए अपनी कहानियों का उल्लेख किया।

समापन सत्र को खुले मंच का रूप दिया गया। शोधार्थी एवं श्रोताओं ने प्रश्न पूछे, जिनका माकूल उत्तर देकर मंच पर उपस्थित वक्ताओं ने विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान किया। जनाव सैफ्यद अली अब्बास ने काव्यात्मक शैली में आभार प्रदर्शित किया। सभागृह में भारी संख्या में विद्यार्थी, प्राध्यापक और साहित्य-प्रेमी उपस्थित थे।

माधुरी बाजपेयी, डी/25, श्री सिद्धार्थ दीप, सी.एच.एस., पी.बी. मार्ग, क्रॉस बाबाराम, स्ट्रीट, ग्रंथ रोड, मुम्बई-400 008, मो. : 9820580275
ई-मेल : madhuri_bajpai@rediffmail.com

✧ ✧ ✧

छायावाद का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक

प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष एवं कला संकाय के अधिष्ठाता प्रो. मोहन ने छायावाद के गौण कवियों तथा उस समय की पत्र-पत्रिकाओं के आलोक में छायावाद को देखने का आग्रह किया। इनके अतिरिक्त लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रो. पवन अग्रवाल, डॉ. दिनेश चंद्र दीक्षित, प्रो. जय प्रकाश शर्मा, डॉ. रामशरण गौड़, डॉ. राकेश शर्मा, डॉ. संजीव वर्मा, प्रो. (श्रीमती) प्रेम सिंह, प्रो. कुमुद शर्मा, डॉ. एच. बालसुब्रमण्यम आदि ने छायावाद के विवध पक्षों पर अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किए। कार्यक्रम के विभिन्न सत्रों में डॉ. आलोक रंजन पांडेय, डॉ. करुणा शर्मा एवं डॉ. प्रदीप कुमार ने मंच संयोजन किया।

नई दिल्ली 16 मार्च ''कवि, लेखक एवं कृति की शताब्दी तो प्रायः मनाई जाती है, किंतु किसी साहित्यिक प्रवृत्ति की शताब्दी पहली बार मनाई जा रही है, जिसके लिए मैं नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी को बधाई देता हूँ। छायावाद को उस समय के अधिसंख्य आलोचक समझ नहीं पाए और उन्होंने उसकी घोर निंदा की, आरोप-प्रत्यारोप लगाए, उपहास किया। बाद के आलोचकों आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र आदि ने इसे समझा तथा स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। छायावादी काव्य वास्तव में जागरण का, शक्ति का और चित्तवृत्ति के उदात्तीकरण का काव्य है, जो कि नई सांस्कृतिक चेतना, इतिहास बोध, राष्ट्रीय गौरव, अनुभूति की तीव्रता, ग्राम्य गरिमा, नई भाव-भाषा, नया छंद विधान लेकर आया। आज सौ वर्ष बाद इसी दृष्टि से इसके पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।'' ये शब्द नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय के कला संकाय में 'छायावाद : संदर्भ सापेक्षता' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में बीज वक्तव्य देते हुए लखनऊ विश्वविद्यालय के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रोफेसर सूर्य प्रसाद दीक्षित ने कहे।

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी नव-उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी (पंजी.) द्वारा दिनांक 16 मार्च, 2019, शनिवार को दिल्ली विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। छायावाद के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय संगोष्ठी का मुख्य विषय ''छायावादः संदर्भ सापेक्षता'' रखा गया।

संगोष्ठी का आयोजन पाँच सत्रों में संपन्न हुआ, जिसमें छायावाद विषय के विशेषज्ञों सहित देश भर से आए विभिन्न विद्वतजन ने भाग लिया और छायावाद के महत्त्व और प्रासंगिकता पर अपने विचार रखे। उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष एवं केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के निदेशक, प्रो. अवनीश कुमार ने अपने अमूल्य विचारों से सभा को संबोधित किया और आयोग एवं निदेशालय द्वारा हिंदी हित में किए जा रहे कार्यों पर प्रकाश डाला। सुप्रसिद्ध समालोचक प्रोफेसर सूर्य प्रसाद दीक्षित ने छायावाद पर बीज-वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए छायावाद के नामकरण, विभिन्न आलोचकों के मंतव्य, कवि चतुष्टय के योगदान एवं नवीन संभावनाओं को रेखांकित किया। कार्यक्रम के दौरान नव-उन्नयन सोसाइटी के दस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में दशकीय यात्रा के रूप में 'स्मारिका' एवं नव-उन्नयन की त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'सहृदय' के विशेषांक 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हिंदी' (भाग 1 एवं 2) का लोकार्पण भी किया गया। इसके अतिरिक्त संस्था के उपाध्यक्ष डॉ. रवि शर्मा 'मधुप' की पुस्तक 'चिंतन के साहित्यिक रंग' एवं डॉ. राजरानी शर्मा तथा श्री कृष्ण कुमार की पुस्तकों का भी लोकार्पण किया गया। संस्था के अध्यक्ष प्रो. पूरन चंद टंडन ने संस्था का परिचय एवं उद्देश्य प्रस्तुत किया। संस्था की महासचिव डॉ. विनीता कुमारी ने उद्घाटन सत्र का प्रभावी मंच संयोजन किया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष एवं कला संकाय के अधिष्ठाता प्रो. मोहन ने छायावाद के गौण कवियों तथा उस समय की पत्र-पत्रिकाओं के आलोक में छायावाद को देखने का आग्रह किया। इनके अतिरिक्त लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रो. पवन अग्रवाल, डॉ. दिनेश चंद्र दीक्षित, प्रो. जय प्रकाश शर्मा, डॉ. रामशरण गौड़, डॉ. राकेश शर्मा, डॉ. संजीव वर्मा, प्रो.(श्रीमती) प्रेम सिंह, प्रो. कुमुद शर्मा, डॉ. एच. बालसुब्रमण्यम आदि ने छायावाद के विवध पक्षों पर अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किए। कार्यक्रम के विभिन्न सत्रों में डॉ. आलोक रंजन पांडेय, डॉ. करुणा शर्मा एवं डॉ. प्रदीप कुमार ने मंच संयोजन किया। संगोष्ठी के दौरान शोध-आलेख वाचन किए गए। इसके अलावा विभिन्न सत्रें में डॉ. राजाराम यादव, डॉ. करुणा शर्मा, डॉ. दीपा, डॉ. कुलभूषण एवं शोधार्थी साक्षी एवं विवेक शर्मा ने छायावादी कविताओं की संगीतमयी प्रस्तुति एवं संवाद प्रस्तुति से समा बाँध दिया। कार्यक्रम में लगभग तीन सौ शिक्षकों एवं विद्यार्थियों ने भाग लिया।

समापन सत्र में प्रमाण पत्र वितरण के पश्चात् संस्था के उपाध्यक्ष प्रो. पूरन चंद टंडन ने सभी अतिथियों, आयोजन समिति के सदस्यों एवं उपस्थित सहृदय समाज का धन्यवाद ज्ञापन किया।

रिपोर्ट प्रस्तुति : डॉ. रवि शर्मा 'मधुप', डॉ. संगीता वर्मा, डॉ. रणजीत यादव, अनुराग सिंह एवं विवेक शर्मा।

प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित

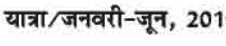

3 मई 2019 को ए.एन. कॉलेज के पुस्तकालय सभागार में 10वीं एस.एन. सिन्हा स्मृति व्याख्यानमाला का उद्घाटन करते मुख्य अतिथि एवं वक्ता राज्यसभा के माननीय उपसभापति एवं जानमाने पत्रकार श्री हरिवंश नारायण सिंह, कार्यक्रम के अध्यक्ष पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय के विद्वान कुलपति माननीय प्रो0 जी.सी.आर. जायसवाल। साथ में हैं महाविद्यालय के प्रधानाचार्य प्रो0 एस.पी. शाही एवं साहित्य यात्रा के संपादक प्रो0 कलानाथ मिश्र तथा प्रो0 प्रीति सिन्हा।

साहित्य महापरिषद, गया का भव्य वार्षिक अधिवेशन दिनांक 7 अप्रैल 19 (रविवार) को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर 'साहित्य का संघर्ष और समय का दायित्व' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में विद्वानों ने अपने विचार रखे। डा. रामनिरंजन परमिलेन्दु, डा. वंशीधर लाल, डा. के. के. नारायण, साहित्य यात्रा के संपादक प्रोफेसर कलानाथ मिश्र, डा. कुमारकांत, डा. कर्मानंद आर्य, श्री राजीव रंजन, सचिव साहित्य महापरिषद ने अपने विचार रखे। इस अवसर पर साहित्य यात्रा के संपादक प्रोफेसर कलानाथ मिश्र को जानकी वल्लभ शास्त्री आलोक सम्मान से सम्मानित किया गया।

दिनांक 3 मई 2019 को ए.एन. कॉलेज के पुस्तकालय सभागार में 10वीं एस.एन. सिन्हा स्मृति व्याख्यानमाला में मुख्य अतिथि एवं वक्ता के रूप में 'प्रभावी संसदीय प्रणाली में समाज की भूमिका' विषय पर व्याख्यान देते राज्यसभा के माननीय उपसभापति एवं जानमाने पत्रकार श्री हरिवंश नारायण सिंह। साथ में हैं महाविद्यालय के प्रधानाचार्य प्रो0 एस.पी. शाही एवं साहित्य यात्रा के संपादक प्रो0 कलानाथ मिश्र।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

दिनांक 09 मार्च 2019 को मुंबई स्थित हिन्दुस्तानी प्रचार सभा द्वारा आयोजित संगोष्ठी में बोलती डॉ. सुशीला गुप्ता अध्यक्षता करते सभा के ट्रस्टी व मानद सचिव श्री फ़िरोज़ पैच, मुख्य वक्ता जानेमाने समीक्षक जगदीश्वर चतुर्वेदी। साथ में हैं हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के ट्रस्टी व कोषाध्यक्ष श्री अरविन्द डेगवेकर एवं श्री राजीव निगम।

दिनांक 09 मार्च 2019 को मुंबई स्थित हिन्दुस्तानी प्रचार सभा द्वारा 'हिन्दी कथा साहित्य के विविध आयाम' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में अपना वक्तव्य देते साहित्य यात्रा के संपादक प्रो0 कलानाथ मिश्र मंच पर हैं प्रसिद्ध कथा लेखिका सूर्यबाला, मधु कांकरिया, डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय एवं श्री राजीव निगम।

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # [illegible]